# ज्योति शिखा

मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥

Summit

सप्टेम्बर अंक छपाने में देरी हुई है
इस लीये क्षमा चाहते है ।

# "ज्योति शिखा"

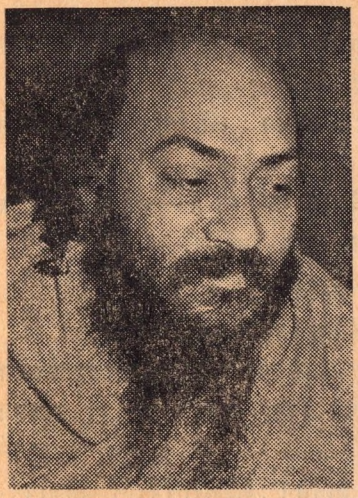



आचार्य श्री रजनीशकी
अमृतवाणी का
त्रैमासिक संकलन

- दसवां संकलन
- सितंबर, १९६८
- मानार्ह संपादक
  प्रो. अरविन्द्

❋

- मुद्रक–प्रकाशक
  श्री पी. एल. मैशेरी
  जीवन जागृति केन्द्र
  १२८ ईस्टर्न चेम्बर्स
  पूना स्ट्रीट, बंबई नं. ९.

❋

- मूल्य : वार्षिक रु. ५।–
  एक प्रति रु. १।२५

## अनुक्रमिका


| क्रमांक | विषय | संकलक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | भय या प्रेम : | श्री अरविंद | ३ |
| २. | जीवन ही है मुक्ति : | श्री अनूप शेठ | २३ |
| ३. | यह अधूरी शिक्षा : | प्रेमचंद माहेश्वरी | ४० |
| ४. | जीवन क्रांति की दिशा : | श्री श्याम सोनी | ५५ |
| ५. | प्रेम है द्वार प्रभुका : | श्री. निक लंक | ७० |
| ६. | समाचार विभाग : | आचार्य श्री के देशव्यापी कार्यक्रम | ९० |

## आचार्य श्री के आगामी माहोंके देशव्यापी कार्यक्रम :

**अक्टूबर ६८.** दि. ५ **जबलपुर,** प्रवचन : श्री भीकमचंदजी, जीवन जागृति केन्द्र, ४५४, हनुमानताल, जबलपुर.

" दि. १३–१४–१५ **पूना** : १०१ टिंबर मार्केट पूना–२, दूरभाष : २४११४

" दि. १६–१७–१८–१९ **अमृतसर** : श्री स्वामी निर्मलजी वेदान्त सम्मेलन माल रोड, अमृतसर

" दि. २०–२१–२२ **गाडरवारा** : प्रवचन : श्री नेमीचंद जैन, जीवन जागृति केन्द्र, गाडरवारा.

" दि. ३०–३१ **नारगोल** : कार्यकर्त्ता सम्मेलन : जीवन जागृति केन्द्र २९, ईस्टर्न चेम्बर्स, १२८ पूना स्ट्रीट, बंबई–९.

**नवंबर ६८** दि. १–२–३ **नारगोल** : साधनाशिबिर,"

" दि. ९. **जबलपुर,** प्रवचन : जीवन जागृति केन्द्र, जबलपुर

" दि. १४–१५–१६–१७ **दिल्ली** : ज्ञानसत्र : श्री सेवकरामजी, सर्वन्टस आफ पीपल सोसायटी, लाजपत भवन, लाजपतनगर, न्यु देहली : दूरभास : ७४१४२.

" दि. २८–२९–३० **सुरेन्द्रनगर** : ज्ञानसत्र : श्री नरोत्तमदास जगजीवन-दास शाह, जीवन जागृति केन्द्र, अरविन्द वस्त्रभंडार, जवाहर रोड, सुरेन्द्रनगर, सौराष्ट्र.

" दि. ३० **अमरेली**

**दिसंबर–६८.** दि. १–२ **राजकोट** : ज्ञानसत्र: श्री धीरजलाल पी. दवे, जीवन जागृति केन्द्र, 'मंगलम्' लक्ष्मीवाडी, राजकोट.

" दि–३ **बंबई** : प्रवचन : जीवन जागृति केन्द्र, पूनास्ट्रीट, ईस्टर्न चेम्बर, बम्बई ९.

" दि–७ **जबलपुर** : प्रवचन : जीवन जागृति केन्द्र, जबलपुर

" दि. १३–१४–१५ **जालंधर** : सत्संग : श्री ओमप्रकाश जी अग्रवाल जीवन जागृति केन्द्र, एन्. के. १७५, चरणजीत पुरा, जालंधर पंजाब, दूरभाष : २६१०.

" दि. २५–२६–२७ **नागपुर** : सत्संग : श्री बाबा उत्तरवार, जीवन जागृति केन्द्र, आनंद निकेतन नं. ५, पंचशील बिल्डिंग्स, वर्धा रोड, नागपुर.

**(शेष पृष्ट १०८ पर)**

# भय या प्रेम ?

(एक प्रवचन)

संकलन : श्री. अरविंद

मनुष्य जाति भय से, चिन्ता से, दुःख और पीड़ा से आक्रान्त है, और पांच हजार वर्षोंसे– आज ही नहीं। जब आज ऐसी बात कही जाती है कि मनुष्यता भय से, चिन्ता से, तनाव से, अशान्ति से भर गई है तो ऐसा भ्रम पैदा होता है जैसे पहले लोग शान्त थे, आनन्दित थे।

यह बात शत प्रतिशत् असत्य है कि पहले लोग शान्त थे और चिन्ता रहित थे। आदमी जैसा आज है वैसा हमेशा था। ढाई हजार वर्ष पहले बुद्ध लोगों को समझा रहे थे, शान्त होने के लिए। अगर लोग शान्त थे तो शान्ति की बात समझाने की क्या जरूरत थी ? पांच हजार वर्ष पहले उपनिषद् के ऋषि भी लोगों को समझा रहे थे, आनन्दित होने के लिए। लोगों को समझा रहे थे दुःख से मुक्त होने के लिए। लोगों को समझा रहे थे प्रेम करने के लिए। अगर लोग प्रेम पूर्ण थे और शान्त थे तो उपनिषद् के ऋषि पागल रहे होंगे। किसको समझा रहे थे ? दुनियां में अबतक ऐसी एक भी पुरानी से पुरानी किताब नहीं है जो यह न कहती हो कि आजकल के लोग अशान्त हो गये हैं। मैं छः हजार वर्षों पुरानी चीन की एक किताब की भूमिका पढ़ रहा था। उस भूमिका में लिखा है कि आजकल के लोग अशान्त हैं, नास्तिक हैं, बहुत बुरे हो गये हैं। पहले के लोग अच्छे थे। छः हजार साल पहले की किताब कहती है पहले के लोग अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे ? ये पहले के लोगों की बात, एक कल्पना (Myth) और सपने से ज्यादा नहीं है। आदमी हमेशा से अशान्त रहा है और इसलिए अगर हम यह समझ लें कि आज अशान्त हैं, आज भय से आक्रान्त हैं, आज चिन्तित और दुःखी हैं तो हम जो भी निदान

खोजेंगे, वह गलत होगा। आजतक की पूरी मनुष्यता किन्हीं अर्थों में गलत रही है, भ्रान्त रही है। केवल आज का ही आदमी गलत नहीं है। आज तक की पूरी मनुष्यता ही कुछ गलत रही है। और उसने अपनी गलती को सुधारने के लिए जो कुछ भी किया है उससे गलती मिटी नहीं, और बढ़ती चली गई।

मनुष्य हमेशा से भयभीत था और है, भय (Fear) के आधार पर उसका सारा जीवन खड़ा हुआ है। जब वह मंदिरों में प्रार्थना करता है तब भी भय के कारण। उसमें जो भगवान गढ़ रखे हैं वह भयसे ही उत्पन्न हुए हैं। जब राजधानियों में लोग पदों की आकांक्षा करते हैं, बड़े पदों पर पहुंचना चाहते हैं तब भी भय के ही कारण। क्योंकि जितने बड़े पद पर कोई होता है उतनी सत्ता और शक्ति उसके हाथ में होती है। उतना भय कम मालूम होता है। इस आशा में आदमी दौड़ता है, दौड़ता है। चंगेज, तैमूर और नेपोलियन और सिकन्दर और हिटलर और स्टेलिन सभी भयभीत लोग हैं। सभी घबराये हुए लोग हैं। सभी डरे हुए लोग हैं। उस भय से बचने के लिए बड़ी ताकत हाथ में हो, इसकी चेष्टा में लगे हुए हैं। धन की जो खोज कर रहा है वह भी भयभीत आदमी है। धन से सुरक्षा (Security) मिल सकेगी इस आशा में वह धन को इकट्ठा करता चला जा रहा है।

मन्दिरों में प्रार्थना करने वाला, राजधानियों में यात्रा करने वाला, धन की तिजोरियों को भरने वाला, ये सभी भय के आधार पर ही जी रहे हैं। वे,–जिन्हें आप संन्यासी समझते हैं, जिन्हें आप समझते हैं कि ये परमात्मा के मार्ग पर चले गये लोग हैं, शायद आपको पता न हो कि वे भी किसी आन्तरिक भय के कारण ही उस यात्रा में संलग्न हो गये हैं।

जीसस क्राइस्ट एकगांव से निकलते थे। उन्होंने गांव की एक सड़क पर कोई पन्द्रह बीस लोगों को रोते हुए, छाती पीटते हुए, उदास बैठे हुए देखा। उन्होंने पूछा तुम्हें यह क्या हो गया है? किसने तुम्हारी यह हालत की है? उन पन्द्रह बीस लोगों ने चेहरे ऊपर उठाये। उनके मुर्झाये हुए चेहरे,–जैसे मौत उनके सामने खड़ी हो। उन्होंने कहा नर्क की बात सुनकर हम इतने भयभीत हो गये हैं।

इस दुनिया में जितने धार्मिक लोग दिखाई पड़ते हैं इनमें से कोई भी मुश्किल से धार्मिक होगा। सौ में से निन्यानवे लोग नर्क के भय के कारण परेशान हैं या स्वर्ग के प्रलोभन के कारण दोनों एक ही बातें हैं। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भयभीत आदमी लोभी होता है क्योंकि सोचता है-इतना मिल जाय इतना मिल जाय। धन मिल जाय, पद मिल जाय, भगवान मिल जाय, स्वर्ग मिल

जाय तो मैं दुःख से बच जाऊं, चिंता से बच जाऊं, पीड़ा से बच जाऊं। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमने आज तक जो भी किया है उसके केन्द्र में भय है। हमारे राष्ट्र, हमारी देशभक्ति, हमारी राजनीति, हमारी फौजें सब हमारे भय पर खड़ी हुई हैं। हमारे देश, हमारी कौमें सब भय पर खड़ी हुई हैं। आकाश में लहराते हुए हमारे झंडे सब भय से खड़े हुए हैं। हम सब एक दूसरे से भयभीत हैं। जिस दिन दुनियां में कोई भय नहीं रहेगा उस दिन दुनियां में कोई जाति नहीं रह जाएगी। कोई देश नहीं रह जाएगा। उस दुनिया में राजनीति का उतना ही मूल्य होगा जितना और सारी संस्थाओं का होता है। राजनीति इतनी मूल्यवान नहीं रह जाएगी। राजनीतिज्ञ की इतनी प्रतिष्ठा नहीं रह जाएगी। राजनीतिज्ञ की प्रतिष्ठा भय के कारण है।

एडाल्फ हिटलर ने कहा है कि अगर किसी को किसी कौम की बागडोर अपने हाथ में लेनी हो तो पहला काम यह है कि उस कौम को भयभीत कर दो। उसे घबरा दो। चीन का खतरा है, पाकिस्तान का खतरा है, ऐसा कोई भय पैदा कर दो। वह भयभीत हो जाय तो सब अपनी बागडोर आपके हाथ में दे देगी। सारी दुनियां की नेतागीरी, सारी दुनियां की लीडरशिप मनुष्य को भयभीत करने के ऊपर आधारित है। सारी गुरुडम-यह हिन्दू, मुसलमानों, ईसाइयों के पोप पादरी, शंकराचार्य– यह सारी गुरुडम भय पर आधारित है। आदमी को भयभीत कर दो फिर वह पैर पकड़ लेगा और कहेगा, "मुझे मार्ग बताओ, मुझे बचाओ।"

आज तक मनुष्य के जीवन को भय के केन्द्र पर ही खड़ा रखा गया है। दुनियां का कोई शोषण चाहे वह शोषण राजनीति का हो, चाहे वह शोषण धर्म-नीति का हो, चाहे वह शोषण धन का हो, चाहे वह शोषण शरीर का हो और चाहे मन का हो, दुनियां का कोई शोषण नहीं चाहता कि आदमी भय मुक्त हो जाय। क्योंकि जिस दिन भय नहीं होगा उस दिन शोषण की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है। आजतक मनुष्य जाति को अभय में प्रतिष्ठित करने का कोई उपाय नहीं किया गया। उसे अभय (Fearlessness) में खड़ा करने के लिए कोई चेष्टा नहीं की गई है। लेकिन हम कहेंगे कि नहीं, चेष्टाएं तो की गई हैं, निर्भय लोग पैदा किये गये हैं। हम फौजों में सैनिकों को निर्भय बनाते हैं। हम उन्हें हिम्मतवर बनाते हैं। शहीद हुए हैं, सिपाही हुए हैं, सैनिक हुए हैं, बड़े बड़े बहादुर लोग हुए हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि निर्भीकता और अभय में बुनियादी फर्क है। अभय में और भय की स्थिति में भी जान को लगा देने में बुनियादी फर्क है। एक सैनिक अभय को उपलब्ध नहीं होता सिर्फ उसकी बुद्धि को जड़ किया जाता है। उसे

जड़ता (stupidity) सिखाई जाती है। उसकी सम्वेदना कम की जाती है ताकि उसे भय का बोध न हो। जड़ बुद्धि लोग भयभीत नहीं होते। भय का अनुभव न हो, इसके लिए बुद्धि की क्षमता को कम किया जाता है। इसलिए सैनिक को हम वर्षों तक लेफ्ट राइट, आगे घूमो, पीछे घूमो, बायें घूमो, दायें घूमों, इस तरह की व्यर्थ अर्थहीन क्रियाओं में संलग्न रखते हैं। इन क्रियाओं का एक ही मूल्य है कि निरन्तर पुनरुक्ति से मनुष्य बुद्धि क्षीण होती है। उसकी सम्वेदना क्षीण होती है। उसकी संवेदनशीलता (sensitivity) कम होती है। अगर एक आदमी को तीन वर्ष तक सुबह तीन घंटे सांझ चार घंटे बायें घूमो, दायें घूमो करवाया जाय तो उसकी बुद्धि की, अनुभव की, चिन्तन करने की क्षमता क्षीण हो जाती है और तब उसे बन्दूकों के सामने भी खड़ा कर दिया जाय तो उसे ख्याल नहीं आता है कि कोई खतरा है। वह अभय को उपलब्ध नहीं हो गया है सिर्फ भय को अनुभव करने की तीव्रता और क्षमता उसकी क्षीण हो गई है। पुनरुक्ति (Repetition) के द्वारा मनुष्य की चेतना को शिथिल (Dull)) करने की कोशिश की जाती है। कोई भी चीज बार बार पुनरुक्त की जाय तो मनुष्य की चेतना क्षीण होती है। एक मां को अपने बेटे को सुलाना होता है तो रात में कहती है कि राजा बेटा सो जा। राजा बेटा सो जा। वह समझती है गीत गा रही है, लोरी गा रही है। बेटा उसका सो जाता है तो वह सोचती है कि बहुत मधुर आवाज के कारण सो गया है। बेटा सिर्फ ऊब (Boredom) की वजह से सो गया है। ऊब पैदा हो जाती है अगर कोई पास बैठ के कहे चले जाय राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। पुनरुक्ति की जा रही है एक ही बात। तो चित ऊबता है। ऊब पैदा होती है। ऊब से उदासी पैदा होती है। उदासी से नींद पैदा होती है। चेतना शिथिल हो जाती है और सो जाते हैं। लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट। राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। राम राम हरे हरे इन सारी बातों की पुनरुक्ति से मनुष्य का भय कम नहीं होता केवल बुद्धि कम होती है। एक आदमी भयभीत होता है अंधेरी गली में, तो कहने लगता है जय हनुमान – जय हनुमान। एक आदमी ठंडे पानी में स्नान करता है तो कहने लगता है-हर हर महादेव, हर हर महादेव। जहां भी भय मालूम होता है वहां आदमी शब्दों की पुनरुक्ति करने लगता है। शब्दों की पुनरुक्ति से अनुभव की क्षमता क्षीण होती है। सैनिक और संन्यासी, भक्त और लड़ाके अभय को उपलब्ध नहीं होते, केवल बुद्धिहीनता को उपलब्ध होते हैं।

मनुष्यजाति अबतक दो तरह के काम करती रही है। एक तो भय को पैदा करती रही है, ताकि शोषण पैदा किया जा सके और फिर जब भय पैदा हो जाता

है तो उस भय से बचाने के लिए जड़ता पैदा करती रही है ताकि आदमी भय में कहीं मर ही न जाय। यह पांच हजार वर्ष की मनुष्य की आंतरिक शिक्षा की कथा है। और आज हम इतने भयभीत हो रहे हैं, हर आदमी कंप रहा है अपने भीतर। जितना सभ्य देश है वहां उतना ही ज्यादा भयभीत मनुष्य है। प्राण कंप रहे है, सोते जागते कोई चैन नहीं है। एकदम भय पकड़े हुए है। यह पांच हजार वर्षों की शिक्षा का शिखर (climax) है। यह कोई इस युग की भूमिका नहीं है। यह तो चल रहा है हजारों वर्षों से उसका अंतिम परिणाम है। पति पत्नी से भयभीत है। पत्नी पति से भयभीत है। बाप बेटे से भयभीत है। बेटे बाप से भयभीत हैं। पडौसी पड़ौसी से भयभीत है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से भयभीत है। हिन्दू मुसलमान से भयभीत है। सब एक दूसरे से भयभीत हैं। ये इतने भय से कांपता हुआ जगत अगर रोज रोज युद्धों में से गुजर जाता हो तो आश्चर्य नहीं है। जो भयभीत हैं वह अन्ततः युद्ध में जायेगा। भय युद्ध में ले जाने का मार्ग है। चूंकि भय फिर बढ़ता जायगा तो हम क्या करेंगे ? हम तैयारी करेंगे अपनी रक्षा की। पडौसी भी तैयारी करेगा अपनी रक्षा की। एक दूसरे की तैयारी देखकर फिर एक दुष्ट चक्र (vicious circle) पैदा होगा और हम तैयारी करते चले जायेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन, एक रात एक रास्ते से गुजर रहा था। अंधेरा रास्ता था और उस तरफ से एक बारात आती थी। घोड़े पर सवार लोग थे बंदूकें दागते हुए लोग थे। फकीर नसरुद्दीन ने समझा कि कोई डाकू आरहे हैं। अंधेरे में डाकू किसी को भी दिखायी देना शुरू हो जाते हैं। उजाले में भी दिखायी पड़ते हैं, लेकिन आदमी जरा बल पकड़े रहता है। उजाले में ठीक ठीक दिखायी पड़ता है, और लोग भी देख रहे हैं। अंधेरे में डाकू आरहे हैं। नसरुद्दीन ने सोचा "कैसे बचूं, क्या करूं, अकेला हूं ?' बंदूकें लिए मालूम होते हैं, घोड़े पर सवार हैं।" पास में ही कब्रिस्तान था। दीवाल से छलांग लगाकर वह एक नयी खोदी गयी कब्र में लेट कर सो गया ताकि वे निकल जायें। लेकिन वही नहीं डरा था बारात के लोगों को देखकर। बारात के लोग भी रात अंधेरे रास्ते में एक आदमी को दीवाल पर चढते देखकर डर गये। पता नहीं कौन है ? कोई हत्यारा है ? बारात रुक गयी दिवाल के पास। उन्होंने अपनी लालटेनें और बत्तियां ऊपर उठायीं। दीवाल पर सारी बारात चढ़ गयी उस आदमी की खोज में। नसरुद्दीन के तो प्राण सूख गये। उसने सोचा निश्चित ही डाकू हैं उसके पीछे चले आ रहे हैं। दीवाल पर चढ़ गये हैं। उसने आंखे बन्द कर लीं। और जब उन्होंने उस आदमी को कब्र में जिन्दा आंख बन्द किये लेटा

देखा तो वह और हैरान हो गये। उन्होंने अपनी बन्दूकें भर लीं। वे नीचे आये और उन्होंने कहा – "बोलो तुम यहां किसलिए आये हो ? क्या कर रहे हो ? नसरुद्दीन ने कहा – मेरे दोस्तो, यही मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि आप यहां क्या कर रहे हैं, और किसलिए आये हैं ? उन लोगों ने कहा; –हम किसलिए आये हैं ? नसरुद्दीन उठकर खड़ा हो गया और कहा कि मैं क्या कहूं : आप मेरी वजह से यहां हैं और मैं आपकी वजह से यहां हूं !

(you are here because of me and I am here because of you!)

सारी दुनिया भयभीत है और अगर पूछने जाइए किसी से कि क्यों भयभीत हैं ? तो पाइएगा कि मैं आपके कारण भयभीत हूं और आप मेरे कारण भयभीत है। रूस अमरीका के कारण भयभीत है, अमरीका रूस के कारण भयभीत है। पति पत्नी के कारण भयभीत है पत्नी पति के कारण भयभीत है। और सच्चाई यह है कि हमारे चित्त का केन्द्र भय बन गया है। और हम शायद किसी के कारण भयभीत नहीं हैं–हम सिर्फ भयभीत हैं–अकारण। और सिर्फ अपने भय को हम तर्कसम्मत (Rationalize) बनाते हैं कि हम इसके कारण भयभीत हैं– मैं इस बात से भयभीत हूं। मैं मौत के कारण भयभीत हूं। मैं बीमारियों के कारण भयभीत हूं। मैं इस बात से भयभीत हूं, मैं उस बात से भयभीत हूं।

हम सिर्फ भयभीत हैं। हमारी आत्मा ही भय से भर गयी है। क्यों भर गयी है ? क्या रास्ता है ? भजन कीर्तन करें, मंदिरों में जायें, पूजा पाठ करें ? बहुत हो चुके भजन कीर्तन। बहुत हो चुकी पूजा– प्रार्थनाएं। आज तक मनुष्यता भय से दूर नहीं हुई। जो चीज भय से ही पैदा होती है उससे भय दूर नहीं हो सकता। वह भजन कीर्तन, वह पूजा पाठ भय से ही पैदा हो रहा है। बन्दूकें बनायें ? एटम बनायें ? हायड्रोजन बम बनायें ? उससे भय दूर होगा ? उससे भी भय दूर नहीं हुआ। भय बढ़ता ही चला गया। बम भय से ही पैदा हुए हैं इसलिए बमों के कारण भय दूर नहीं हो सकता है। बन्दूकों के कारण भय दूर नहीं हो सकता क्योंकि बन्दूक भय के कारण ही पैदा हुई है। आपने घरों में तस्वीरें देखी होंगी बहादुर लोगों की तलवारें हाथों में लिए हुए। जो भी आदमी हाथ में तलवार लिए हुए है वह बहादुर नहीं है। वह भयभीत है। चाहे सड़कों पर मूर्तियां बनी हों, चाहे घरों में फोटो लटकी हों। जिस आदमी के हाथ में तलवार है वह आदमी भयभीत है, वह बहादुर नहीं है। हाथ में तलवार भय का सबूत है। इतनी बात जरूर है कि भयभीत आदमी अपने से कमजोर आदमी को भयभीत करने की कोशिश करता है। इस भांति उसे यह विश्वास हो जाता है कि मैं भयभीत नहीं हूं, दूसरा भयभीत है। इसलिए दुनिया में

हर आदमी कोशिश करता है कि दूसरे को भयभीत कर दें। किसलिए? इसलिए, ताकि वह यह विश्वास कर ले कि तुम कांप रहे हो, मैं नहीं कांप रहा हूं। तुम भयभीत हो, मैं भयभीत नहीं हूं। इसीलिए पति "मालिक" बनकर पत्नी को भयभीत किये रहता है। पति खुद भयभीत है। वह पत्नी को जब डरा देता है, रुला देता है, पत्नी को जब पैरों में गिरा लेता है तब वह आश्वस्त होता है कि मैं भयभीत नहीं हूं। मैं बहादुर आदमी हूं। यह औरत भयभीत है। दफ्तर में वह जाता है, उसका बास उसको कंपा देता है और थर्रा देता है। उसी हालत में पहुंचा देता है जिस हालत मे पति पत्नी को पहुंचा देता है। उसका मालिक सोचता है मैं भयभीत नहीं हूं। मैं साधारण आदमी नहीं हूं। सौ आदमी मेरे नीचे काम करते हैं।

और पीढ़ी दर पीढ़ी हर आदमी दूसरे को भयभीत करके कुछ और नहीं कर रहा है, इतना ही कर रहा है, अपने लिए विश्वास पैदा कर रहा है। आत्म-विश्वास जुटा रहा है। यह हिटलर और स्टेलिन बड़े भयभीत लोग हैं। ये सारी दुनिया को कंपा देते हैं। विश्वास लाना चाहते हैं कि तुम सब कांप रहे हो, मैं नहीं कांप रहा हूं। लेकिन हिटलर रात को अपने दरवाजे बन्द करके सोता है। वह रात भर जागता रहता है कि कहीं कोई आ तो नहीं गया। स्टेलिन अपनी पत्नी के साथ भी उसी कमरे मे रात भर नहीं सोता है। स्टेलिन बड़ी बड़ी सभाओं में स्वयं नहीं जाता। अपनी शकल सूरत का आदमी रख छोड़ा है, डबल रख छोड़ा है। वह जाता है सभाओं में। फौज की परेड की सलामी स्टेलिन खुद नहीं लेता है, दूसरा लेता है जो उसकी शकल सूरत का है, क्योंकि खतरा है, कोई गोली न मार दे। नादिर रातभर नहीं सो सकता था। जरा सी खटखटाहट हो कि तलवार निकाल कर खड़ा हो जाता था, क्या है? कौन है? और नादिर की मौत इसी तरह हुई। एक घोड़ा छूट गया उसके कैम्प का रात को। और नादिर के तम्बू के पास से निकल गया। घोड़े की आवाज सुनकर नादिर उठा। उसने समझा कि कोई दुश्मन आ गया घोड़े पर सवार होकर। अंधेरे में वह बाहर निकला और भागने की कोशिश की। पैर में रस्सी फंस गयी तम्बू की और वह गिर पड़ा और मर गया। यह आदमी राजधानियां कत्ल करता रहा, मकानों में आग लगवाता रहा। किसलिए?

ये दुनियां भर के राजनीतिज्ञ क्या चाहते हैं? ये सब भयभीत लोग हैं। ये दूसरे को भयभीत कर यह विश्वास जुटा लेना चाहते हैं कि नहीं, कौन कहता है मैं भयभीत हूं? भयभीत सारी दुनियां होगी। ये सिंहासनों की यात्रा करने वाले लोग भय की ग्रन्थि (Fear complex) से परेशान और पीड़ित लोग हैं। दुनिया के बड़े

नेता, दुनिया के बड़े सेनापति, दुनिया के बड़े विजेता ये सारे लोग भय से पीड़ित लोग हैं। इन्हीं भयभीत लोगों के हाथ में दुनिया है और वे सब एक दूसरे से भयभीत हैं इसलिए रोज युद्ध पैदा हो जाता है।

जबतक भय है तबतक दुनिया से युद्ध समाप्त नहीं हो सकता। यह तो हो सकता है कि युद्ध के कारण भय समाप्त हो जाय क्योंकि आदमी ही समाप्त हो जाय, लेकिन यह नहीं हो सकता कि भय जबतक है तबतक युद्ध समाप्त हो जाय। अब तो हम उस जगह पहुंच गये हैं कि हमारे भय ने अंतिम उपाय ईजाद कर लिए हैं, अब तो हम पूरी मनुष्यता को समाप्त करने में समर्थ हो गये हैं। समर्थ पूरी तरह हो गये हैं शायद जरूरत से ज्यादा हो गये हैं। मैं सुनता हूं कि वैज्ञानिकों ने इतना इन्तजाम कर रखा है कि अगर एक एक आदमी को सात सात बार मारना पड़े तो हमने व्यवस्था कर ली है। हो सकता है कोई भूल चूक हो जाय। कोई आदमी मारने से एक दफा बच जाय। दोबारा मार सकें, दो बार भी बच सकता है। तीसरी बार मार सकें। सात बार-हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, दुबारा मारने की कभी कोई जरूरत आज तक नहीं पड़ी। लेकिन भूल चूक न हो जाय इसलिए इन्तजाम पूरी तरह करना उचित है। तीन साढ़े तीन अरब आदमी हैं। पच्चीस अरब आदमियों के मारने की सारी दुनिया में व्यवस्था है। अबकी बार हम आदमी को बचने नहीं देंगे, क्योंकि अबकी बार भय चरम स्थिति में हमारे प्राणों को आंदोलित कर रहा है। क्या करें इस भय के लिए ? क्या उपाय खोजें ?

एक बात आपसे कहना चाहता हूं, इसके पहले कि भय के संबंध में हम क्या करें, इस बात को समझ लेना जरूरी है। अगर इस भवन में अंधकार भरा हो और हम किसी से पूछने जायें कि अंधकार को निकालने के लिए हम क्या करें ? और वह हमसे कहे कि धक्के दे दे कर अंधकार को बाहर निकाल दो, हम सब लौट आयें और अंधकार को धक्के देकर निकालने की कोशिश करें तो क्या परिणाम होगा ? अंधकार निकल सकेगा ? या कि अंधकार को निकालने में हम समाप्त होने के करीब ही पहुंच जायेंगे। भय के साथ भी यही हुआ है। भय को निकालने की हम पांच हजार वर्ष से कोशिश कर रहे हैं, भय को निकालने के लिए हम भगवान को जप रहे हैं। स्वर्ग, नर्क, मोक्ष की कल्पना कर रहे हैं। भय को निकालने के लिए हम बन्दूकें, बम, अणु अस्त्र तैयार कर रहे हैं। भय से बचने के लिए हम किले की मजबूत दीवाल उठा रहे हैं। धन की दीवाल उठा रहे हैं। पद प्रतिष्ठा के किले खड़े कर रहे हैं। लेकिन बिना यह पूछे कि क्या भय को निकाला जा सकता है सीधा ? मेरी दृष्टि में भय अंधकार की तरह नकारात्मक है। अंधकार को सीधा नहीं निकाला जा सकता है। हां, प्रकाश जला

लिया जाय तो अंधकार जरूर निकल जाता है लेकिन अंधकार को कभी कोई सीधा नहीं निकाल सकता । वस्तुतः वह कुछ है नहीं, केवल प्रकाश की अनुपस्थिति मात्र है । प्रकाश को लाते ही अंधकार नहीं पाया जाता है ।

कहना गलत है कि निकल जाता है क्योंकि निकलने को कुछ भी नहीं है । कोई चीज निकलकर बाहर नहीं चली जाती है । जब आप दिया जलाते हैं, कुछ बाहर नहीं जाता, कुछ मिटता नहीं अंधकार तो प्रकाश की अनुपस्थिती (Absence) मात्र थी । प्रकाश आ गया, अनुपस्थिति समाप्त हो गयी ।

शायद आपने सुना हो । एक बहुत पुरानी घटना है । भगवान के पास अंधकार ने जाकर एक बार शिकायत कर दी और कहा था कि यह सूरज तुम्हारा मेरे पीछे बहुत बुरी तरह पड़ा हुआ है । मैं बहुत परेशान हो गया हूं । सुबह से मेरा पीछा करता है । सांझतक मुझे थका डालता है । जहां जाता हूं वहीं हाजिर है । फिर जब मैं बहुत थक जाता हूं तब रात थोड़ी देर सो पाता हूं । सुबह फिर मौजूद हो जाता है । रात भर विश्रामभी नहीं हो पाता है कि सूरज फिर तैयार है । यह करोड़ों वर्षों से चल रहा है । मेरा क्या कसूर है, मैंने सूरज का क्या बिगाड़ा है । भगवान ने कहा, यह तो बड़ा अन्याय चल रहा है । मैं सूरज को बुलाकर पूछ लूं । उसने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम अंधकार के पीछे क्यों पड़े हो ? क्यों उसे परेशान किये जा रहे हों ? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? सूरज ने कहा–अंधकार ! यह नाम मैंने कभी सुना नहीं ! यह व्यक्ति मैंने कभी देखा नहीं । अबतक मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई । मैं क्यों पीछे पड़ूंगा ? जिससे मेरी पहचान भी नहीं उससे मेरी शत्रुता कैसे होगी । आप अंधकार को मेरे सामने बुला दें तो मैं पहचान भी लूं और क्षमा भी मांगलूं ।

अबतक भगवान सूरज के सामने अंधकार को ला ही नहीं सके । ला भी नहीं सकेंगे, क्योंकि सूरज का अस्तित्व है । प्रकाश विधायक (positive) है । अंधकार नकारात्मक (Negative) है, सूरज के सामने अंधकार नहीं लाया जा सकता क्योंकि अंधकार सूरज की ही अनुपस्थिति है, गैर मौजूदगी है । अब जहां सूरज स्वयं मौजूद है वहां उसकी गैरमौजूदगी भी कैसे लायी जा सकती है ? मैं यहां मौजूद हूं तो मेरी गैरमौजूदगी (Absence) मेरे साथ ही यहां कैसे मौजूद हो सकती है ? या तो मैं हो सकता हूं, या मेरा न होना हो सकता है । यहां दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं ।

लेकिन मनुष्य के भय के सम्बन्ध में यही भूल चलती रही है । हम भय को दूर करने की कोशिश करते हैं । भय नकारात्मक गुण (Negative quality) है, भय का कोई अस्तित्व नहीं है । भय किसी चीज की अनुपस्थिति है । किसी विधायक गुण का अभाव है । शायद आपको ख्याल में ही न हो कि भय प्रेम का अभाव है । जिस हृदय में प्रेम

नहीं है वह हृदय भयभीत रहेगा ही । आमतौर से इसका ख्याल नहीं आता क्योंकि हम भय के साथ घृणा को सोचते हैं । घृणा भय का विरोध है । भय प्रेम का अभाव है । तो हम कभी भय के साथ प्रेम को सोचते ही नहीं । जिस हृदय में प्रेम नहीं वह भयभीत होगा ही । और अगर आपने जीवन में कभी भी थोड़ा सा प्रेम अनुभव किया हो तो आपने जाना होगा कि जो क्षण प्रेम का है वही क्षण अभय (Fearlessness) का भी है । जिसके प्रति आपका प्रेम है उसके प्रति आपका भय समाप्त हो जाता है ।

एक नवयुवक का विवाह हुआ है । वह अपनी नयी विवाहिता पत्नी को लेकर जहाज की यात्रा पर निकला है। पुराने जहाज हैं, पुराने दिनों की बात है। तूफान आगया है और जहाज कांपने लगा है, अब डूबा, तब डूबा होने लगा है लेकिन वह युवक मौज में बैठा हुआ है । उसकी पत्नी घबरा रही है, कांप रही है और उससे कहने लगी कि तुम इतने शान्त बैठे हो और जहाज डूबने को है । मौत करीब मालूम होती है । तुम कैसे इतने निश्चिन्त मालूम होते हो ? वह युवक हंस रहा है । उसने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली और उस युवती के कन्धे पर रख दी है, फिर अपनी पत्नी के गलेपर रखदी है और वह पत्नी हंस रही है । वह युवक कहने लगा, मेरे हाथ में तलवार है तुम्हारी गर्दन पर नंगी तलवार रखे हूं फिर भी तुम हंस रही हो ? तो उस पत्नी ने कहा मुझे तुमसे प्रेम है तो तुम्हारी तलवार से भय नहीं मालूम होता है । उस युवक ने कहा मुझे परमात्मा से प्रेम है इसलिए तूफान से भय नहीं मालूम होता है।

जहां प्रेम है वहां भय की कोई संभावना नहीं। अगर हम भय को निकालने की कोशिश करेंगे तो हम ज्यादा जड़ता को उपलब्ध हो सकते हैं, अभय को नहीं । अगर हम प्रेम को जन्माने की कोशिश करेंगे तो भय प्रेम के जन्म के साथ वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे प्रकाश के जन्म के साथ अंधेरा नष्ट हो जाता है । लेकिन मनुष्य जाति को प्रेम की कोई शिक्षा नहीं दी गयी है। शिक्षा भय की दी गयी है । इसीलिए तो हर आदमी थोथा मालूम होता है क्योंकि व्यक्तित्व का केन्द्र अगर नकारात्मक है तो आदमी का पूरा व्यक्तित्व प्राणहीन होगा । व्यक्तित्व का केन्द्र अगर नकारात्मक है तो व्यक्तित्व में बल नहीं हो सकता वह थोथा, पोच (Impotent) होगा । इसलिए सारी मनुष्य जाति नपुंसक हो गयी है । कोई बल नहीं है । कोई जीवन्त प्रेरणा नहीं है । कोई भाव भरा हुआ कोई आनन्द से भरा हुआ हृदय नहीं है । कोई ज्योति से भरी हुई आंखें नहीं हैं । सब भयभीत, भय से, खतरे से घबराये हुए कांपते (Trembling) हुए और डरे हुए हैं । मनुष्य के व्यक्तित्व के केन्द्र पर पांच हजार वर्षों से भय को रखा गया है। भय नकारात्मक है इसलिए व्यक्तित्व भी नकारात्मक हो गया है। एक ही गुण है विधायक वह है प्रेम और एक ही गुण है नकारात्मक और वह है भय जांच लिया और दो ही महत्वपूर्ण

है जीवन में, या भय या प्रेम। जहां भय है वहां अपने आप घृणा पैदा हो जायगी। जिससे हम भयभीत होते हैं उससे हम कभी भी प्रेम नहीं कर सकते हैं। इसीलिए तो परमात्मा की इतनी शिक्षा दी गयी दुनिया में, लेकिन परमात्मा का प्रेम पैदा नहीं हो सका; क्योंकि परमात्मा से भयभीत किये गये आदमी को समझाया गया है ईश्वर-भीरु (GodFearing) होने के लिए, ईश्वर से भयभीत होने के लिए। दुनिया के धर्म यही समझाते रहे हैं कि ईश्वर से डरो। जिससे डरा जाता है उससे कभी प्रेम नहीं किया जा सकता है। यह मनुष्य जाति जो नास्तिक हो गयी है वह ईश्वर भीरु होने की शिक्षा से हो गयी है। नास्तिकों के कारण दुनिया नास्तिक नहीं हुई है। और दुनियांमें अब भी आस्तिक पैदा होजाते हैं तो नास्तिकों के बीच से, लेकिन आस्तिकों के बीच से कभी कोई आस्तिक पैदा नहीं होता। आस्तिकों के बीच से आस्तिक पैदा हो ही नहीं सकते क्योंकि आस्तिक है ईश्वर से डरा हुआ, और जहां डर है वहां प्रेम असम्भव है। जहां भय है वहां प्रेम असम्भव है। जिससे हम भयभीत होते हैं उससे हम घृणा करते हैं, गहरे में घृणा करते हैं। ऊपर से हाथ जोड़ सकते हैं, लेकिन भीतर मन होता है गला घोंट दें।

धर्मभीरुओं ने ईश्वर का गला घुंटवा दिया। उन्होंने सिखाया कि ईश्वर से डरो। और आदमी इतना डर गया कि उसने सोचा कि जिससे इतना डरना पड़ता है उसकी हत्या ही कर दो। और मनुष्य ने ईश्वर की हत्या कर दी। फिर आदमी ने कहा, इसका फैसला ही कर दो जिससे इतना भय खाना पड़ता है। इसलिए नीत्से कह सका कि ईश्वर मर गया है (God is dead)। पूछा किसी ने किसने मार डाला है ईश्वर को ? नीत्से ने कहा– आदमी के हाथ देखो, ईश्वर के खून से रंगे हुए हैं। आदमी ने गर्दन दबा दी उसकी जिससे इतना भयभीत होना पड़ता था।

ईश्वर के प्रति भय पैदा करके धर्म नष्ट हो गया क्योंकि भय विधायक और रचनात्मक शक्ति (creative force) नहीं है। भय तो नकारात्मक और विध्वंसक शक्ति है। लेकिन हम सब तरह के भय पैदा करते रहे हैं। बाप बेटे में भय पैदा करता है, कि मैं बाप हूं और उसे पता नहीं कि वह बेटे को तैयार कर रहा है कि बाप की हत्या कर दे। और बेटे मिलकर बाप की हत्या कर ही रहे हैं सारी दुनियां में। यह हत्या जारी रहेगी जबतक बाप बेटे को भयभीत करता है। जबतक वह कहता है कि मैं जो कहता हूं वह ठीक है क्योंकि मेरे हाथ में ताकत है। मैं तुझे घर के बाहर कर दूंगा। मैं तेरी गर्दन दबा दूंगा। जबतक पत्नी कहेगी पति से कि मेरे हाथ में ताकत है। जबतक हम परिवार में एक दूसरे को भयभीत करने की कोशिश करेंगे, तबतक अच्छे मनुष्य का जन्म नहीं हो सकता है। तो हम सब एक

दूसरे को डरा रहे हैं। हमारा सारा सम्बन्ध भय का सम्बन्ध हैं। विद्यार्थी गुरू के चरण छूता है भय के कारण और गुरू चरण छुलवाता है ताकत के कारण। हम पैर छुलवा रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं और हमें पता नहीं कि इस तरह से हम अपने प्रति घृणा पैदा कर रहे हैं। इस घृणा का बदला लिया जायगा। बेटे बड़े हो जाते हैं, बाप बूढ़ा हो जाता है। ताकत की स्थिति बदल जाती है। बेटे के हाथ में ताकत आजाती है, बाप कमजोर हो जाता है। पांसा पलट जाता है, बदला लिया जाता है और बेटे बाप को सताने शुरू करते हैं। यह प्रतिक्रिया (Reaction) है, यह प्रतिध्वनि है। बाप ने बेटे को बचपन में सताया है, अब पांसा पलट गया है। तब बाप ताकतवर था। तब वह छोटे से बच्चे को डरा सकता था। वह डंडा उठा सकता था। द्वार बन्द कर सकता था। घर के बाहर निकाल सकता था। उसने जो भयभीत किया था बेटे को, उस भय के कीटाणु भीतर रह गये हैं, वे बदला मांगते हैं। क्योंकि भय विध्वंसात्मक है, बदला चाहता है। भय से घृणा पैदा होती है। विरोध पैदा होता है। विद्रोह पैदा होता है। बच्चा प्रतीक्षा करेंगा कि हाथ में ताकत आजाय। कल जवान हो जायगा। ताकत हाथ में आ जायगी। बाप बूढ़ा हो जायगा, कमजोर हो जायगा। फिर सताने की प्रक्रिया उलट जायगी। बेटा बाप को सतायेगा।

हम सब एक दूसरे को भयभीत कर रहे हैं। हमारा सारा व्यक्तित्व भय पर खड़ा हो गया है। हम ईश्वर को भी इसी आधार पर समझते हैं और धर्म को भी। हम किसी को यह कहते हैं कि सत्य बोलो तो साथ में यह भी कहते हैं कि सत्य नहीं बोलोगे तो नर्क जाओगे। हत्या कर दी सत्य की। सत्य के साथ भय जोड़ा जा सकता है? सत्य के साथ भय का कोई सम्बन्ध हो सकता है? सत्य विधायक गुण है, भय नकारात्मक गुण है। सत्य का प्रेम से सम्बन्ध हो सकता है, भय से सम्बन्ध नहीं हो सकता। नीति का प्रेम से सम्बन्ध हो सकता है लेकिन भय से सम्बन्ध नहीं हो सकता। लेकिन पांच हजार वर्षों से नकारात्मक गुणों को विधायक धर्मों के साथ जोड़ा जा रहा है। इसलिए मनुष्यता नष्ट हो रही है। यह समाज के जीवन में जहर घोला जा रहा है। एक बूंद जहर पूरे जीवन को नष्ट कर देता है। एक नकारात्मक बूंद पूरे विधायक गुण को नष्ट कर देती है। यहीं बच्चे को हम कह रहे हैं कि सत्य बोलो नहीं तो मारेंगे। हम सोच ही नहीं रहे हैं कि हम कौन-सी दो चीज़ जोड़ रहे हैं। हम वह कह रहे हैं कि नीति का आचरण करो नहीं तो नर्क जाना पड़ेगा। वहां कड़ाहें हैं, आग जलती है, तेल उबलता है और उसमें डाले जाओगे। भगवान को भी बड़ा मजा आता होगा इन कामों से—बेचारे गरीब आदमी को, कमजोर

आदमी को कड़ाही में डालकर बहुत मजा आता होगा।

एक पादरी, एक चर्च में समझा रहा था। भयभीत कर रहा था लोगों को। लोग कांप रहे थे, औरतें बेहोश होकर गिर पड़ी थीं। आपको पता होगा, ईसाइयों के एक सम्प्रदाय का नाम ही क्वेकर्स (Quakers) पड़ गया है। क्वेकर्स का मतलब ही है कंपाने वाले लोग। और एक सम्प्रदाय शेकर्स है (Shakers) वे भी कांपनेवाले लोग हैं। तो उस पादरीने इतना कंपा दिया था कि लोग बिल्कुल कांपने लगे थे। और जितने लोग डरते जा रहे थे उतनी उसकी कविता नरक के चित्रण में गहरी होती चली जा रही थी। लोग कांप रहे थे तो बहुत मजा आ रहा था। किसी को कंपाने से ज्यादा मजा और किसी चीज में नहीं है। खलील जिब्रान कहता था कि मैं एक खेत के पास से निकल रहा था, एक झूठा आदमी खेत में खड़ा हुआ था जैसा किसान बनाकर खड़े कर देते हैं। एक हंडी बांध देते हैं, एक कुरता लटका देते हैं। एक झूठा आदमी खेत में खड़ा हुआ था। वर्षा आती है। धूप आती है, सर्दी आती है, लेकिन झुठा आदमी खेत में शान से खड़ा रहता है। जिब्रान ने कहा, "मैंने' झूठे आदमी से पूछा, "दोस्त, बहुत थक जाते होंगे। बड़े ऊब जाते होंगे अकेले में खड़े खड़े। बरसात आती है, धूप आती है, तुम यहीं इसी तरह तने खड़े रहते हो। उसने कहा, "बिलकुल नहीं घबराता हूं, बिलकुल ऊब नहीं आती है, क्योंकि पक्षियों को डराने में इतना मजा आता है जिसका कोई हिसाब नहीं।" जिब्रान ने कहा, 'यह तो बात तुम बहुत ठीक कहते हो। आदमी को डराने में मुझको भी मजा आता है। और झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा, तब तुम भी एक झूठे आदमी हो।'

जिसको दूसरे को डराने में मजा आता है, वह झूठा आदमी (Pseudo Human being) है। क्योंकि उसके व्यक्तित्व का केन्द्र नकारात्मक है, भय है। वास्तविक मनुष्य, वास्तविक केन्द्र पर पैदा होता है। वह केन्द्र प्रेम है। तो मैं जिस पादरी की बात कर रहा था, वह कंपा रहा है लोगों को। वे घबरा रहे हैं और तभी उसने कहा, मालूम है तुम्हें, नरक में क्या होगा? इतनी सर्दी पड़ेगी कि दांत किटकिटाएंगे। एक आदमी खड़ा हो गया। उसने कहा, क्षमा करें मेरे दांत टूट गए हैं। मेरा क्या होगा? पादरी को बहुत गुस्सा आया जैसा धर्म गुरुओं को गुस्सा आता है गलत-सही प्रश्न पूछने पर। एक क्षण तो वह रुक गया। गुस्से में उसने कहा कि ऐसे फिजूल के प्रश्न पूछते हो? झूठे दांत दे दिये जाएंगे (False teeth will be provided) उनको लगा लेना फिर कांपना लेकिन कांपना जरूर पड़ेगा। दांत जरुर किटकिटाने पडेंगे।

आदमी को हमने सर्वश्रेष्ठ चीजों के साथ भय से जोड़ दिया। पांच हजार वर्ष की सारी मनुष्य जाति की शिक्षा व्यर्थ हो गयी है, नर्क हो रही है। यह जो नकारात्मक भय है, इस केन्द्र से मनुष्य को हटा लेने की जरूरत है। अगर एक ऐसी दुनियां चाहिए जहां दुनिया के जीवन में सौंदर्य हो, संगीत हो, आनंद हो गरिमा हो व्यक्तित्व की, एक बिखेरती हुई किरण हो जीवन की। एक स्वतंत्रता हो। एक एक व्यक्ति का अपना अनूठापन हो। जहां सम्बन्ध हों प्रेम के। जहां युद्ध न हो। जहां शांति हो। इसके लिए मनुष्य के व्यक्तित्व के केन्द्र को बदल देना जरूरी है। भय की जगह प्रेम। जीवन की समस्त शिक्षाओं से भय को अलग कर देना जरूरी है। एक एक इंच से अलग कर देना जरूरी है। लेकिन वह अलग नहीं होगा जैसा मैंने कहा। अंधेरे को अलग नहीं किया जा सकता है तब क्या किया जा सकता है? दिए को जलाया जा सकता है। प्रेम की ज्योति को जलाया जा सकता है। प्रेम को प्रगट किया जा सकता है। और आदमी के भीतर प्रेम इतना छिपा है जिसका कोई हिसाब नहीं। यह दुनिया छोटी है और एक आदमी के भीतर का प्रेम पूरा बहना शुरू हो जाय तो यह जगत छोटा है। जैसे हमें कल तक पता नहीं था कि एक अणु में कितनी ऊर्जा हो सकती है। एक छोटे से अणु में कितनी शक्ति हो सकती है। अणु का विस्फोट अनन्त शक्ति को जन्म देता है यह कल तक हमें पता नहीं था। एक रेत के छोटे से कण से एक बड़ा महानगर नष्ट हो सकता है। हाइड्रोजन के एक छोटे से कण से बम्बई की महानगरी इसी क्षण राख हो सकती है यह कभी हमें पता नहीं था। पानी की एक बूंद के एक छोटे से कण में कितनी ताकत हो सकती है इसका कल तक हमें कोई अंदाज नहीं था। आदमी के भीतर कितनी ताकत हो सकती है प्रेम के कण में, इसका हमें कोई पता नहीं। कभी कभी थोड़ी झलक मिली है। कभी किसी बुद्ध मे। कभी किसी क्राइस्ट में। कभी किसी सुकरात में, छोटी सी झलक मिली है। लेकिन उस झलक को देखते ही हम एकदम टूट पड़ते हैं और उसे बुझा देते हैं। सुकरात दिखाई पड़ा कि हमने मारा। जीसस दिखाई पड़े कि सूली पर लटकाया। गांधी दिखाई पड़ा कि गोली मार दी। हम इतने जोर से कूदते हैं इस झलक को मिटाने के लिये, क्यों? क्योंकि वह झलक हम सबका अपमान बन जाती है। क्योंकि वह झलक हमें खबर देती है कि हम सबके घर अंधेरे में पड़े हैं और एक घर में दिया जल गया। बुझा दो इस दिए को। हम निश्चित हो जायं विश्राम (at ease) में हो जायं कि सब जगह अंधेरा है। ठीक है हम भी अंधेरे में हैं। आज तक दुनियां में जब भी प्रेम की झलक किसी आदमी में आयी तो हमने

उसे बुझाने की कोशिश की है ताकि हम निश्चिंत हो जायं, ताकि आत्मग्लानि पैदा न हो, घृणा पैदा न हो कि मैं कैसा आदमी हूं ? जब बुद्ध पैदा हो सकते हैं, जब महावीर पैदा हो सकते हैं, जब क्राइस्ट पैदा हो सकते हैं, तो मेरे भीतर क्यों नहीं हो सकती है यह घटना ? एक एक आदमी के भीतर वही छिपा है जो सब आदमियों के भीतर छिपा हुआ है। आदमियत का बीज एक-सा ही बीज है। आम के एक बीज से आम का वृक्ष पैदा होता है। आम के दूसरे बीज से भी आम का वृक्ष पैदा होता है। आम के तीसरे बीज से भी आम का वृक्ष पैदा होता है। आदमियत के पास भी एक ही बीज है। उसी तरह एक ही वृक्ष भी पैदा हो सकता है। लेकिन हम उसे पैदा नहीं होने देते। कोई वृक्ष हो जाता है तो काट डालते हैं ताकि हमको यह ग्लानि न आए कि हम कुछ गलत हैं। प्रेम की बड़ी सम्भावना मनुष्य के भीतर है लेकिन न उसकी शिक्षा है न उसे जगाने का उपाय है, न उसे प्रगट होने देने की सुविधा है, बल्कि हम सब प्रेम के शत्रु है। हमने सब जगह ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि प्रेम कहीं पैदा न हो। हमने ऐसी चालाकियां की हैं कि प्रेम के लिए कोई मार्ग नहीं छोड़ा है...। कहीं कोई मार्ग नहीं छोड़ा है। और प्रेम पैदा न हो तो जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह कुछ भी पैदा नहीं होता। जैसा कि मैंने कहा–, जहां भय है, वहां घृणा पैदा होगी। जहां भय है, वहां ईर्ष्या पैदा होगी। जहां भय है, वहां हिंसा पैदा होगी। जहां भय है वहां क्रोध पैदा होगा। जहां भय है वहां पूरा नर्क पैदा होगा। क्योंकि भय के ये सब अनुसांगिक हैं। ये सब भय की संतति हैं। ये सब भय के सूत्र हैं। जहां प्रेम है वहां आनंद पैदा होगा, वहां शांति पैदा होगी, वहां करुणा पैदा होगी। वहां दया पैदा होगी। वहां सौंदर्य पैदा होगा। वहां स्वर्ग के द्वार खुलेंगे क्योंकि ये सब प्रेम की संतति हैं। भय के केन्द्र का अंतिम परिणाम विक्षिप्तता (Madness) और प्रेम के केन्द्र का अंतिम परिणाम विमुक्ति है।

प्रेम कैसे जन्मे ? प्रेम की बंद दीवारें कैसे टूटें ? कोई राजनीतिज्ञ दुनिया का कोई नेता विश्व शांति नहीं ला सकता है क्योंकि राजनीति के सारे केन्द्र भय के हैं। कोई धर्मगुरु शांति नहीं ला सकता है क्योंकि तथाकथित धर्मगुरुओं का केन्द्र ही भय है, जिसके आधारपर वह गुरु बना हुआ है और शोषण कर रहा है। दुनिया में तो एक ही रास्ते से शांति आ सकती है, मनुष्य के व्यक्तित्व में और समस्त जीवन में, और वह रास्ता है, प्रेम का जन्म हो। कैसे प्रेम का जन्म हो, प्रेम क्या है, वह कैसे पैदा हो ? वह सबके भीतर पड़ा हुआ बीज है लेकिन बीज बीज ही रह जाता है, वह अंकुरित नहीं हो पाता। उसे भूमि नहीं मिल पाती।

उसे पानी नहीं मिल पाता । उसे सूरज की रोशनी नहीं मिल पाती । वह बीज बीज ही रह जाता है । और जो बीज ही रह जाता है उसके भीतर एक कसक, एक दर्द, एक पीड़ा रह जाती है कि मैं जो हो सकता था, वह नहीं हो पाया । एक विफलता उसके आसपास छायी रह जाती है । मनुष्य में जो चिंता दिखाई पड़ती है, वह प्रेम के बीज प्रगट न होने की चिंता है । मनुष्य में जो उदासी दिखाई पड़ती है वह उसके भीतर जो होने की सम्भावना (potentiality) थी, वह न हो पाने के कारण ही है । सम्भावना वास्तविकता (Actuality) न बन पाये, तो एक गहरा दुख व्यक्ति चेतना को पकड लेता है । लेकिन व्यक्ति जो होने को पैदा हुआ है, जो उसकी नियति है, वह हो जाये तो एक अद्‌भुत आनंद से वह भर जाता है । जब एक गुलाब–फूलों से भर जाता है और जब एक चमेली खिल जाती है, तो सुगंध लुटाती हुई और हवा में नाचती हुई उसकी पत्तियों को देखा है ? हवामें नाचते हुए उस पोधे को देखा है जिसके फूल खिल गए हैं पूरी तरह । उससे ज्यादा मौज में, उससे ज्यादा आनंद में कोई कभी दिखायी पड़ता ? निश्चित ही जिस पौधेपर फूल नहीं आ पाते हैं जिसकी कलियां, कलियां ही रह जाती हैं और कुम्हला जाती हैं, उसकी उदासी देखिए, उसकी चिंता देखिए, उसके लटके हुए, मुरझाए हुए, पत्ते देखिए । आदमी के भीतर जो जो फूल खिलने को हैं, अगर न खिल पाए तो वह भी उदास हो जाता है । चिंतित हो जाता है । लटक जाती हैं उसकी पत्तियां, उसका व्यक्तित्व भी मुरझा जाता है । ऐसे ही सारी मनुष्यता का व्यक्तित्व मुरझा गया है । क्या कभी आपने अपने से पूछा है कि मेरी सबसे गहरी प्यास क्या है धन, पद, मोक्ष, परमात्मा ? नहीं । अगर आप अपने से गहरे से गहरे में पूछेंगे तो प्राण एक ही उत्तर देता है— "प्रेम दे सकूं और पा सकूं ।" एक ही उत्तर है प्राणियों के पास कि प्रेम मुझसे बह सके और मुझतक आ सके । एक ऐसा जीवन जहां प्रेम की वीणा अपने पूरे संगीत को प्रगट कर सके, ऐसा जीवन जहां प्रेम का पूरा फूल खिल सके । एक, एक मनुष्य के केन्द्र पर इसके अतिरिक्त कोई पुकार नहीं है । कोई आवाहन नहीं है । और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जिस दिन यह प्रेम का फूल पूरी तरह खिलता है उसी दिन परमात्मा भी उपलब्ध हो जाता है । प्रेम परमात्मा का द्वार है । लेकिन प्रेम का हमें कोई ख्याल नहीं, कोई मान नहीं, क्या करें ? यह प्रेम कैसे विकसित हो, इसकी बन्द दीवालें कहां से तोड़ी जायं, यह झरना कहां से फोड़ा जाय कि खुल जाय ? कुछ करना बहुत अपरिहार्य हो गया है, बहुत जरूरी हो गया है । अगर हम नहीं करते हैं तो शायद प्रेम के अभाव में पूरी मनुष्यता नष्ट भी हो सकती है । इसीलिए दो तीन छोटे-से

सूत्र आपसे कहना चाहता हूं जिससे यह प्रेम की सरिता बह उठे।

पहली बात, जिस व्यक्ति को जीवन में प्रेम के फूल को खिलाना हो उसे प्रेम मांगने का ख्याल छोड़ देना चहिए। उसे प्रेम देने का ख्याल कर लेना चाहिए। पहला सूत्र, जो लोग प्रेम मांगते हैं, उनके भीतर प्रेम का बीज कभी अंकुरित नहीं हो पाएगा। जो लोग प्रेम देते हैं उनके भीतर प्रेम का बीज अंकुरित हो सकता है। क्योंकि अंकुरित होने के लिए दान चाहिए। एक बीज जब अंकुरित होता है तो क्या करता है? पत्तियां निकलती हैं, शाखाएं निकलती हैं, फूल खिलता है, सुगंध बिखर जाती है, सब बंट जाता है। बट जाने से भीतर का बीज खुलता है और मांगने से सिकुड़ जाता है। भिखमंगे से ज्यादा सिकुड़ा हुआ हृदय किसी का भी नहीं होता है। जो मांगता है, वह सिकुड़ता जाता है। उसके भीतर कोई चीज बन्द होती चली जाती है। प्रेम के द्वार पर जो भिक्षा के लिए हाथ फैलाते हैं, उनके हाथ खाली ही रह जाते हैं। लेकिन जो देने के लिए हाथ बढ़ाते हैं, उनका दान अनंत गुना होकर लौट आता है। लेकिन हम सब भिखारी बने खड़े हैं। कारण कि हम भय से भरे हैं।

और भयभीत आदमी मांगता है। भयभीत भिखमंगा होता है। भय ही अकेला भिखारी है, क्योंकि भय कहता है कि इसे मत छोड़ो। जो मिल जाय उसे ले लो। भय भिखारी बनाता है। प्रेम सम्राट बना देता है। लेकिन सम्राट बनने की दिशा देना है, मांगना नहीं। प्रेम का पहला सूत्र है कि प्रेम तब तक जन्म नहीं पा सकेगा जब तक हम मांगते हैं, हम सब एक दूसरे से मांगते हैं। मां बच्चे से कहती है कि तुम प्रेम नहीं करते हो, बेटा सोचता है, मां मुझे प्रेम नहीं करती। पत्नी कहती है, पति मुझे प्रेम नहीं करता। चौबीस घंटे एक ही शिकायत है पत्नी की कि तुम प्रेम नहीं करते और पति की भी वही शिकायत है कि मैं थका-मांदा घर आता हूं मुझे कोई प्रेम नहीं मिलता है। दोनों मांग रहे हैं, दोनों भिखारी, एक दूसरे के सामने झोली फैलाए खड़े हुए हैं। पर यह सोचते नहीं कि उस तरफ भी मांगनेवाला खड़ा है। इस तरफ भी मांगनेवाला खड़ा है। जीवन में कलह और द्वन्द्व और युद्ध न होगा तो क्या होगा? जहां सभी भिखारी हैं वहां जीवन बरबाद नहीं होगा तो और क्या होगा? प्रेम के जन्म का पहला सूत्र है-प्रेम दान है– भिक्षा नहीं। इसलिए जीवन में देने की तरफ दृष्टि जगनी चाहिए। यह मत कहें कि पति मुझे प्रेम नहीं देता। उसका एक ही मतलब है, आप प्रेम नहीं दे रही हैं। यह मत कहें कि पत्नी मुझे प्रेम नहीं दे रही है। इसका एक ही मतलब है कि आप प्रेम नहीं दे रहे हैं। क्योंकि जहां

प्रेम दिया जाता है वहां तो वह अनंतगुना होकर वापस लौटता है जीवन का यही शाश्वत नियम है। गाली दी जाती है, तो गालियां अनंत गुना होकर वापस लौटती हैं और प्रेम दिया जाता है तो प्रेम अनंत गुना होकर वापस लौट आता है। जीवन एक इकोप्वाइंट से ज्यादा नहीं है। जहां हम जो ध्वनि करते हैं, वह गूंजकर वापस हम पर आ जाती है। और हर व्यक्ति एक इकोप्वाइंट है। उसके पास जो हम करते हैं, वही वापस लौट आता है। वही अनंत गुना होकर वापस लौट आता है। प्रेम मिलता है उन्हें, जो देते हैं। प्रेम उन्हें कभी भी नहीं मिलता है जो मांगते हैं। जब मगांने से प्रेम नहीं मिलता तो और मांग बढ़ती चली जाती है और मांग बढ़ती चली जाती है, और मांग में प्रेम कभी मिलता नहीं है। प्रेम उनको मिलता है जो देते हैं जो बांटते हैं। लेकिन हमें हमेशा बचपन से यह सिखाया जा रहा है मांगो, मांगो, मांगो ! इस मांग ने हमारे भीतर के बीच को सख्त कर दिया है। इसलिए पहला सूत्र है प्रेम दो। दूसरा सूत्र देने में अगर अपेक्षा रखेंगे, देने में अगर कोई प्रत्याशा (expectation) है, रखेंगे, देने में अगर कोई ख्याल है, कि लौटना चाहिए तो कभी नहीं लौटेगा। लौटेगा नहीं और भीतर जो पैदा हो सकता था, वह भी पैदा नहीं क्योंकि देना कभी भी सशर्त (conditional) नहीं हो सकता है। दान हमेशा बेशर्त है।

तो दूसरा सूत्र है प्रेम का जन्म होगा, अगर बेशर्त दान हो। बेशर्त दान प्रेम की शिक्षा की दूसरी सीढ़ी है। लेकिन हम हमेशा शर्त बन्द हैं। देने के पहले हमारी मांग खड़ी है। देने के वक्त हमारी अपेक्षा खड़ी है। दिया नहीं और हम तैयार हैं कि उत्तर वापस आना चाहिए। ऐसा जो मन है, जो उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है, उसे पता नहीं है कि उस उत्तर प्रतीक्षा में देने के कारण उसके भीतर जो पैदा होता है, वह उसे दिखाई ही नहीं पड़ेगा। जब मैं किसी को प्रेम दूं तो अगर उससे कोई अपेक्षा है तो नजर उसपर लगी रहती है कि वह क्या करता है और अगर उससे कोई अपेक्षा नहीं है तो देने के बाद नजर खुद पर जाती है, कि देने से क्या हुआ है। देने से भीतर के फूल खिल उठते हैं। उसके लिए ध्यान (Meditation) चाहिए – जिसकी नजर दूसरे पर होती है उसका ध्यान तो उसपर कभी जाता ही नहीं, जो स्वयं उसके भीतर हो रहा है। ध्यान उसपर जाता है जिसके साथ हमने किया है। चूक गये एक मौका। जैसे बीज के लिए सूरज की किरणें चाहिए ऐसे ही भीतर प्रेम के बीज के लिए ध्यान की किरणें चाहिए। ध्यानपूर्ण चेतना चाहिए ताकि मेरा ध्यान भीतर जाये। ध्यान की किरणें भीतर जायें। भूमि चाहिए दान की, किरणें चाहिए ध्यान की। तो भीतर

किरणें चाहिए लेकिन मेरा ध्यान तो लगा हुआ है उसपर जिसको मैंने प्रेम दिया है। मैंने किसी को हाथ का सहारा देकर जमीन से उठा दिया तो देख रहा हूं कि आसपास फोटोग्राफर है या नहीं। कोई अखबार वाला है या नहीं। वह आदमी उठकर धन्यवाद देता है या नहीं। चूक गया मैं मौका। एक क्षण आया था जब मैं भीतर जा सकता था। और जो दान घटित हुआ था उस दान के पीछे जो भीतर फूल खिल सकता था उसे देखता। मेरे देखने के साथ ही वहां भीतर कोई कली खिल जाती, लेकिन मैं चूक गया। देखने का मौका भूल गया। मैं बाहर देखने लगा। मैं फोटोग्राफर खोजने लगा। मैं अखबार वाले को देखने लगा। मैं उस आदमी को देखने लगा कि बेइमान कुछ कहता है कि चुपचाप चला जाता है? धन्यवाद देता है कि नहीं? चूक गया एक क्षण, एक पल आया था जब भीतर नजर जाती तो कोई चीज खिल जाती। आपको शायद पता न हो आंख जहां चली जाती है वही चीज खिल जाती है। मनुष्य के पास जो सबसे बड़ी ताकत है वह आंख की ताकत है, देखने की ताकत है। और कोई बड़ी ताकत नहीं है। सबसे बड़ी, सबसे सूक्ष्म, सबसे मूल्यवान ताकत जो है वह देखने की है। किसी को जरा प्रेम से देखें, जैसे वहां कोई चीज खिल जाती है। कोई उदासी मिट गई, कोई रोशनी हो गई तो जरा प्रेम से देखिये वहां जैसे कोई फूल खिल गया है। कोई सुगन्ध आ गई है। ऐसे ही जब कोई भीतर, अपने भीतर दान के क्षण में प्रेम से देखता है, निहारता है तो वहां भी कोई चीज खिल जाती है। हृदय में कोई फूल खिल जाता है।

दूसरा सूत्र है दान के क्षण में बेशर्त, बिना किसी अपेक्षा के, चुपचाप मौन, बिना किसी उत्तर के रह जाना, तीसरा सूत्र है-जो आपके प्रेम को स्वीकार करले उसके प्रति अनुग्रह का भाव (Gratitude) कि उसने स्वीकार किया। हम तो यह चाहते हैं कि वह हमारा धन्यवाद करे कि हमने उसे प्रेम दिया। लेकिन प्रेम का बीज यह चाहता है कि हम अनुग्रह स्वीकार करें। कोई इन्कार भी कर सकता था। एक गिरा हुआ आदमी यह भी कह सकता था कि नहीं मत उठाओ। फिर मेरी क्या सामर्थ्य कि मैं उसे उठाने का मौका पाता। लेकिन नहीं उसने मुझे उठाने दिया। उसने एक अवसर दिया कि मेरे भीतर जो प्रेम है वह बह सके। उसने एक मौका (opportunity) दिया उसके लिए धन्यवाद देना चाहिए। यह नहीं कि वह मेरा धन्यवाद करे। मैं उसे धन्यवाद दूं कि मैं कृतज्ञ हुआ। मैं अनुगृहीत हुआ। तो मैं अनुगृहीत हूं कि तुमने मेरे प्रेम को स्वीकार कर लिया। यह तीसरा सूत्र है। जो प्रेम को स्वीकार करे उसके प्रति अनुग्रह भाव। इस अनुग्रह के भाव में भीतर की कली और जोर से चटखेगी और खिलेगी।

क्योंकि अनुग्रह के भाव में ही जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह खिलता है और विकसित होता है। अनुग्रह से बड़ा कोई भाव नहीं, कोई प्रार्थना नहीं। लेकिन हाथ जोड़े बैठे हैं भगवान के सामने और कुछ शब्द दोहरा रहे हैं यह प्रार्थना नहीं है। जीवन के समक्ष अनुग्रह का भाव, तारों के समक्ष, सूरज के समक्ष, फूलों के समक्ष, लोगों के समक्ष चारों तरफ यह जो विराट जीवन है, इसके प्रति कृतज्ञता का भाव क्योंकि ये प्रेम को स्वीकार करता है। यह मेरे प्रेम को बहने का मौका देता है। ये मेरी आत्म-उपलब्धि में सहयोगी और मित्र बन गया है। इस सबका अनुग्रह, इस सबका धन्यवाद जब मन में होगा तो भीतर के झरने फूट पड़ेंगे और जिस दिन प्रेम का झरना भीतर बहने लगता है उसीदिन पाया जाता है कि भय कहीं भी नहीं है। है ही नहीं। वह था ही नहीं। वह प्रेम की अनुपस्थिति थी। वह गैर मौजूदगी थी। और जब प्रेम से हृदय भर आता है तो इस जगत में कोई भय नहीं रह जाता। तब हाथ में तलवार उठाने की जरूरत नहीं। तब राम राम जपकर मन को बोथला करने की कोई जरूरत नहीं है। तब तो सब तरफ राम ही दिखाई पड़ने लगता है। तब तो सब तरफ उसी परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। जब भीतर परमात्मा होता है तो सारा जगत परमात्मा हो जाता है। और जब भीतर भय होता है तो सारा जगत शत्रु हो जाता है। भीतर जो है वही बाहर हो जाता है। भीतर भय है तो बाहर शत्रुता है। भीतर प्रेम है तो बाहर प्रभु है। वह प्रीतम, फिर सब तरफ वही है, हर इशारे में, हर दृष्टि में, जीवन में, मौत में, कांटे में, फूल में, पत्थर में सब में वही है। जिस दिन हृदय इतने प्रेम से भर जाता है कि चारों ओर परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं, उसी दिन भय का अंधकार विलीन हो जाता है। और जहां भय नहीं है वहां जीवन का सत्य है। जहां भय नहीं है वहां जीवन का आनंद है। जहां भय नहीं है वहां जीवन का सौन्दर्य है। और जहां भय नहीं है वहां जीवन का संगीत है। लेकिन अभी तो हम सब विसंगीत में है, दुख में हैं, चिन्ता में हैं, भय में हैं, क्योंकि प्रेम का मंदिर हम नहीं बना पाये। आज तक की पूरी मनुष्यता ही गलत रही है। ठीक और स्वस्थ मनुष्यता का जन्म हो सकता है। उसके लिए मनुष्य के प्राणों से भय को हटाकर प्रेम को स्थापित करना होगा।

★

# जीवन ही है मुक्ति

**( एक प्रवचन )**

**संकलन : श्री अनूप सेठ**

में एक नये बनते हुए मंदिर के पास से निकल रहा था। मंदिर की दीवालें बन गयी थीं। शिखर निर्मित हो रहा था। सैकड़ों मजदूर पत्थर तोड़ने में लगे थे। मैंने पत्थर तोड़ते एक मजदूर से पूछा : "मित्र, क्या कर रहे हो ? उस मजदूर ने बहुत गुस्से से मुझे देखा और कहा, "क्या आपके पास आंखें नहीं हैं ? क्या आपको दिखायी नहीं पड़ता ? मैं पत्थर तोड़ रहा हूँ।" कोई क्रोध होगा उसके मन में। कोई निराशा होगी। और पत्थर तोड़ना कोई आनन्द का काम भी नहीं हो सकता है। मैं उस मजदूर को छोड़कर आगे बढ़ गया और दूसरे मजदूर से पूछा। वह भी पत्थर तोड़ रहा था "मित्र, क्या कर रहे हो ?" उस मजदूर ने क्रोध से तो नहीं, लेकिन अत्यन्त उदासी से मेरी तरफ देखा और कहा, "आजीविका कमा रहा हूं, बच्चों के लिए रोटी कमा रहा हूं। क्या आपको दिखायी नहीं पड़ता ?" वह भी पत्थर तोड़ रहा था लेकिन उसने कहा बच्चों के लिए रोटी कमा रहा हूं। निश्चित ही केवल रोटी कमाना बहुत आनन्द की बात नहीं हो सकती है। उदास था और दुखी था लेकिन फिर भी पहले पत्थर तोड़नेवाले से भिन्न थी उसकी दशा। क्रोधित नहीं था। मैं और आगे बढ़ा और एक तीसरे पत्थर तोड़ने वाले आदमी से मैंने पूछा, "मित्र, क्या कर रहे हो ?" वह कोई गीत गुनगुनाता था। उसने आखें ऊपर उठाई। उसकी आंखों में किसी आनन्द की झलक थी। उसने कहा: "देखते नहीं हैं आप, भगवान का मन्दिर बना रहा हूं ?" वह भी पत्थर तोड़ रहा था।

वे तीनों ही पत्थर तोड़ रहे थे। एक क्रोध से भरा था। एक उदासी से और एक आनन्द से। वे तीनों एक ही काम कर रहे थे। लेकिन जो आदमी पत्थर तोड़ रहा था वह क्रोध से भरेगा ही क्योंकि जीवन तो पत्थर तोड़ने के लिए नहीं है और जिनका जीवन पत्थर तोड़ने में ही नष्ट हो जाता है वे अत्यन्त क्रोधित हो उठते हों तो आश्चर्य नहीं। दूसरा व्यक्ति क्रोधित तो नहीं था लेकिन उदास था। क्योंकि जिन्दगी रोटी कमाने में ही व्यतीत हो जाय तो उदासी के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आ सकता है और वे लोग अभागे हैं जो रोटी कमाने में ही जीवन नष्ट करते हैं। लेकिन तीसरा व्यक्ति भगवान का मंदिर बना रहा था। वह भी पत्थर तोड़ रहा था। लेकिन भगवान का मंदिर बनाना एक आनन्द है और धन्य हैं वे लोग जो जीवन में भगवान का मंदिर बनाने में समर्थ हो पाते हैं। हम भगवान के मंदिर बनाने वाले कैसे बन सकते हैं इस सम्बन्ध में ही थोड़ी बात आपसे करूंगा।

यह बात बड़े दुख से मुझे कहनी पड़ती हैं कि पृथ्वी पर अधिकतम लोग या तो पत्थर तोड़ते हैं या ज्यादा रोटी कमाते हैं। मुश्किल से कोई सौभाग्यशाली कभी भगवान का मंदिर बनाने में संलग्न हो पाता है। इसीलिए तो इतना दुख है, इतनी उदासी है, इतना क्रोध और इतना विषाद है। लेकिन मनुष्य क्यों जीवन को भगवान का मन्दिर नहीं बना पाता है? क्या कारण है कि जीवन एक आनन्द नहीं हो पाता? क्या कारण है कि जीवन एक नृत्य नहीं बन पाता? क्या कारण है कि जीवन की वीणा पर संगीत पैदा नहीं हुआ? जीवन एक दुख भरी रात क्यों है? जीवन एक प्रकाश से भरा हुआ दिवस क्यों नहीं? जीवन कांटों का मार्ग ही क्यों है, फूलों की बगिया से गुजर जाना क्यों नहीं? जीवन और आंसू ही क्यों है? एक आनन्द और एक मुस्कराहट क्यों नहीं? कोई बुनियादी कारण होगा और उस कारण से शायद एक व्यक्ति का सवाल नहीं है, पूरी मनुष्य जाति का सवाल है। किसी एक व्यक्ति की भूल नहीं है। जैसे पूरी मनुष्य जाति किसी बुनियादी भूल को कर रही है। उस पहली भूल पर ही मुझे बात करना है।

वह पहली भूल यह है कि आज तक मनुष्य के इतिहास में, मनुष्य के अगुवा और नेता होने वाले लोग बीमार और रुग्ण रहे। मनुष्य जाति को अबतक स्वस्थ मस्तिष्क का नेतृत्व नहीं मिल सका है। मनुष्य को उन लोगों ने नेतृत्व दिया है जो अपने भीतर दुखी रुग्ण, अस्वस्थ और विक्षिप्त थे। स्वस्थ व्यक्तित्व का नेतृत्व ही मनुष्य जाति को उपलब्ध नहीं हो सका। रुग्ण लोगों ने सारे जीवन के कूएं को विषावत कर दिया। वे खुद जीवन में जिस आनन्द को नहीं पा सके

अपनी असमर्थता को उन्होंने जीवन की ही भूल समझना शुरू कर दी। उस लोमड़ी की कथा हम सब ने पढ़ी है जो अंगूर के गुच्छों को तोड़ने में संलग्न थी। बहुत उछली और कूदी। उसने पूरी शक्ति लगायी लेकिन अंगूर के गुच्छे न पा सकी। तब वह बहुत गरिमा और गौरव से वापस लौट गयी और राह में जो लोग मिले उनसे उसने कहा, "मुझे क्या पता था कि अंगूर खट्टे हैं। मैंने तो सोचा था, अंगूर पक गये हैं लेकिन निकट जाकर पता चला कि अंगूर खट्टे हैं। उन्हें तोड़ने में कोई सार नहीं।"

मनुष्य जाति को भी ऐसे लोगों ने नेतृत्व दिया है जिन्हें जीवन के अंगूर उपलब्ध नहीं हो सके और उन्होंने कहा, "सारा जीवन खट्टा है हमें क्या पता था अन्यथा हम तोड़ने ही नहीं जाते।" सच्चाई दूसरी थी। जीवन के रस भरे फल वे उपलब्ध नहीं कर सके लेकिन इस बात को स्वीकार करने से कि जीवन के फल मुझे उपलब्ध नहीं हो सके हैं, अहंकार को बड़ी चोट लगती है। इसलिए दूसरा उपाय आसान है कि जीवन असार है और व्यर्थ है। आजतक मनुष्य के मन को जीवन की असारता की शिक्षा ने ही विषाक्त किया है। जमीन पर बहुत विष फैलाने वाले लोग पैदा हुए हैं। जीवन के सारे कूओं में जहर घोल दिया गया है। यही समझाया जाता रहा है आज तक कि जीवन व्यर्थ है। जीवन दुख है, और जीवन में करने जैसी एक ही चीज है और वह है जीवन से छूट जाना, आवागमन से मुक्त हो जाना। झूठी हैं ये बातें और इनका कोई अर्थ नहीं। जीवन को छोड़ देने की बातें, । जीवन को व्यर्थ कहने की बातें, जीवन को बुरा बताने की बातें मनुष्य के मन में गहरे बिठा दी गयी हैं। और ऐसा चित्त अगर प्रारम्भ से ही इस जीवन को दुख मान लेता हो, अगर जीवन में आनन्द न पा सके तो जिम्मेदार कौन है ? हम सब जीवन में दुख से भरे हुए हैं। यह जीवन का दोष नहीं है। यह जीवन को देखने का हमारा गलत दृष्टिकौण है जिसने जीवन को दुख से भर दिया है। जीवन बुरा नहीं है। हमारा मन विषाक्त है। हमारे मन रुग्ण हैं। जीवन में कांटे ही कांटे नहीं हैं। और न जीवन ऐसा है कि उसे छोड़ देना ही, उससे मुक्त हो जाना ही, उससे भाग जाना ही एकमात्र लक्ष्य हो। नहीं, यह बताने वाले लोगों ने सारी मनुष्य जाति के मन को अन्धकार पूर्ण कर दिया है। ये ही लोग, जिन्होंने आदमी के जीवन की निन्दा की है, जीवन अनुभव करने की क्षमता को पात्रता को कम करनेवाले लोग भी हैं लेकिन इनकी शिक्षा का प्रभाव अबतक रहा है। जीवन विरोधी शिक्षाओं के प्रभाव में ही मनुष्य की यह विकृत दशा पैदा कर दी है।

एक चर्च में एक सुबह उस चर्च के धर्मगुरू ने अपने सुनने वाले लोगों से

एक बात कही । हो सकता है आप भी वहां मौजूद रहे हों, शायद आपने यह बात सुनी भी होगी । उस धर्मगुरु ने यह कहा कि मेरे मित्रो, इसमें से कितने लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं । जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, अपने हाथ ऊपर उठायें । धर्मगुरू ने सोचा था सभी लोग हाथ ऊपर उठा देंगे । करीब करीब सभी लोगों ने हाथ ऊपर उठाये थे लेकिन सामने बैठा हुआ एक व्यक्ति हाथ नीचे ही किये रहा । सभी स्वर्ग जाना चाहते थे । धर्मगुरू को बहुत आश्चर्य हुआ । क्या ऐसा भी कोई आदमी हो सकता है जो नर्क जाना चाहता है । फिर उसने कहा, अब आप अपने हाथ नीचे कर लें और अब मैं पूछता हूं, जो नर्क जाना चाहते हैं वे अपने हाथ ऊपर उठायें । एक भी आदमी ने हाथ नहीं उठाया । उस आदमी नें भी नहीं जिसने स्वर्ग जाने के लिए हाथ नहीं उठाया था । धर्म गुरु हैरान हुआ । उसने कहा, मेरे भाई, तुमने न तो स्वर्ग जाने के लिए हाथ उठाये, न नर्क जाने के लिए । तुम कहां जाना चाहते हो । उस आदमी ने कहा मैं यहीं रहना चाहता हूं, जीवन में । और मैं जीवन में ही स्वर्ग बनाना चाहता हूं । न मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं न मैं नर्क जाना चाहता हूं क्योंकि जो स्वर्ग जाना चाहते हैं उन्होंने इस पृथ्वी को नर्क बना दिया है क्योंकि उनकी आंखें किसी काल्पनिक स्वर्ग में लगी हुई हैं और वास्तविक पृथ्वी उपेक्षित पड़ी रह गयी है । जो लोग जीवन को छोड़ देना चाहते हैं जीवन की किसी भूल के कारण नहीं । अपनी किसी रुग्णता, अपनी किसी बीमारी के कारण, जीवन को, जीवन के रस को, जीवन के आनन्द को उपभोग नहीं करने की क्षमता के कारण । वे लोग जीवन को नर्क बनाने में सहयोगी हो जाते हैं । तो उस आदमी ने कहा, जितने लोगों हाथ ऊपर उठाये हैं स्वर्ग जाने के लिए यही लोग पृथ्वी को नर्क बनाये हुए हैं । मैं न स्वर्ग जाना चाहता हूं, न नर्क जाना चाहता हूं । मैं इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाना चाहता हूं । आज तक मनुष्य को पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की शिक्षा नहीं दी गयी है इसलिए पृथ्वी नर्क बन गयी है । इसलिए हमारा जीवन नर्क बन गया है । और मैं आपसे यह निवेदन कर दूं जो इस जीवन के स्वर्ग में नहीं हो सकते, उनके लिए कोई स्वर्ग कहीं भी नहीं है और न हो सकता है । और जो लोग इस जीवन को स्वर्ग में परिवर्तित कर सकते हैं उनके लिए इस जगत में, किसी लोक में नर्क नहीं है । वे जहां भी होंगे, जहा भी उनका जीवन होगा वे वहीं स्वर्ग में होने की कला में निष्णात हो गये होंगे ।

जीवन एक अवसर है । उसे जो स्वर्ग बना लेता है वह आनेवाले जीवन के स्वर्गों की बुनियाद रख देता है, और इस जीवन को जो नर्क बना लेता है वह आनेवाले नर्कों का रास्ता शुरू कर देता है, यात्रा शुरू कर देता है । हमने पृथ्वी को नर्क बनाया है । और किन लोगों ने नर्क बनाया है उन लोगों ने, शायद मेरी बात बहुत

कठोर मालूम पड़े, लेकिन उन्हीं लोगों ने और मजबूरी है सत्य कहना ही पड़ेगा, उन्हीं लोगों ने जिन लोगों ने पृथ्वी के विरोध में, जीवन के विरोध में शिक्षाएं दी हैं। जीवन का निषेध (Life Negation) और जीवन की उपेक्षा करना सिखाया गया है। यही समझाया गया है कि बुरा है जीवन, दुख है जीवन, पीड़ा है जीवन, बन्धन है जीवन, पिछले जन्मों का, दुष्कर्मों का फल है जीवन। जब जीवन ऐसा हो तो फिर जीवन को आनन्द का मन्दिर कैसे बनाया जा सकता है। तब तो एक ही काम है हमारे हाथ में कि तोड़ दें इस मन्दिर को, गिरा दें इसकी दीवालों को, आग लगा दें इसमें और किसी काल्पनिक मोक्ष की तलाश करें, खोज करें।

यह मैं पहली बात आपसे कहना चाहता हूं जीवन क्रांति की दिशा में। जीवन के सृजन में पहली बात है जीवन के प्रति अहो भाव। जीवन के प्रति धन्यता का बोध। जीवन के प्रति आनन्द की धारणा। जीवन के सौन्दर्य और जीवन के रसके प्रति अनुग्रह (Gratitude)। जीवन के जो शत्रु हैं उन्हें जीवन से कुछ भी नहीं मिलेगा। शत्रुता से कभी किसी को कुछ भी नहीं मिला है। जीवन के मित्र जो हैं– जीवन अपनी निधियों के द्वार केवल उनके लिए ही खोलता है। जो प्रेम से जीवन के द्वार पर दस्तक देते हैं, जो प्रेम से जीवन को आलिंगन करने के लिए तत्पर होते हैं, जो प्रेम से जीवन के द्वार पर प्रार्थना करते हैं, जो प्रेम से जीवन को पुकारते हैं और बुलाते हैं और जिनके हृदय में जीवन के विरोध में कोई कांटा नहीं होता है, जीवन के संगीत के लिए फूलों की मालाएं होती हैं केवल उनके लिए ही जीवन एक मंदिर बन पाता है। अन्यथा फिर जीवन एक पत्थर तोड़ने से ज्यादा नहीं हो सकता है।

जीवन का निषेध घातक सिद्ध हुआ है, विषाक्त सिद्ध हुआ है। लेकिन धर्मों के नाम पर जीवन का निषेध ही प्रचलित रहा है। हम उसी आदमी को धार्मिक कहते हैं जो जीवन को जितना तोड़ दे और जीवन से जितना दूर भाग जाये। जो जीवन का जितना शत्रु हो, जीवन का जितना तिरस्कार, जितनी निन्दा कर सके, जीवन को जितना कुत्सित, जीवन को जितना बुरा सिद्ध कर सके, जीवन को जितनी गाली दे सके वह आदमी उतना ही बड़ा धार्मिक प्रतीत होता है। यही लोग हैं अधार्मिक, यही लोग हैं जिन्होंने जीवन को धार्मिक होने से वंचित कर रखा है। लेकिन इनका प्रभाव रहा है जीवन पर, और आज तक मनुष्य जाति इनकी ही अंधेरी छाया के नीचे बढ़ती रही है और जिन्हें हमने मार्गदर्शक समझा है वे ही इन मार्गों को भ्रष्ट करनेवाले लोग हैं। इनकी तरकीब क्या रही है ? इन्होंने किस भांति जीवन को बुरा और निन्दितकर दिया है? इन्होंने जीवन को किस भांति विकार-

ग्रस्त सिद्ध कर दिया ? इन्होंने किस भांति मनुष्य के मन में जीवन और आवागमन से छूटने का भाव पैदा कर दिया ? इनकी तरकीब (technic) क्या है ? इन्होंने किस विधि का उपयोग किया है जिससे जीवन के सब कुए विषाक्त हो गये ? बड़ी अद्‌भुत तरकीब है शायद आपको ख्याल में भी न आयी हो। इनकी तरकीब है चीजों को तोड़ कर देखना। इनकी तरकीब है विश्लेषण (Analysis)। इसे समझना बहुत जरूरी है क्योंकि इसे हम समझ लें तो जीवन कैसे नष्ट किया गया है वह हमारी समझ में आ जायगा।

मैं एक जलप्रपात देखने गया था। एक बड़ी सुन्दर रमणीय पहाड़ी से नदी गिरती थी। उसकी मर्मर ध्वनि, उसके पास खड़े हुए वृक्षों का आनंद उस नदी की तीव्रता और वेग सब अद्‌भुत थे। और प्राणों के किसी अनजाने तले को छू लेते थे। अपने एक मित्र के साथ में उस जगह को देखने गया था। हम दोनों गाड़ी से उतरकर पहाड़ों में प्रवेश करने लगे तो मैंने अपने मित्र को कहा कि आप अपनी गाड़ी के ड्राइवर को भी बुला लें, वह भी देख लेगा। मैंने उस ड्राइवर को कहा कि तुम भी आजाओ। उसने कहा, वहां क्या रखा हुआ है ? पहाड़ी और पानी और कुछ भी नहीं, वहां है क्या ? वहां है क्या पहाड़ और पानी के सिवाय ! और मुझे हैरानी होती है कि लोग सैकड़ों मील से चलकर देखने क्या आते हैं ! कुछ पत्थर पड़े हैं साहब, कुछ पानी गिरता है और कुछ भी नहीं है। मैंने अपने मित्र को कहा कि तुम्हारा ड्राइवर कोई धर्मगुरु होने के लायक है। उसे विश्लेषण की कला का पता है। उसने जल-प्रपात के उस सौन्दर्य को दो छोटी सी चीजों में तोड़ कर स्पष्ट कर दिया है— पत्थर पड़े हैं वहां और पानी हैं वहां और क्या है। बात खत्म हो गयी, कुछ भी नहीं है वहां।

विश्लेषण जीवन की सब चीजोंमें पूछता है और क्या है ? एक सुन्दर चेहरे पर धर्मगुरू पूछता है, है क्या इसमें ? हड्डियां और मांस के सिवाय। आदमी के शरीर में क्या है? पीव है, मज्जा है, खून है, हड्डियां हैं और क्या है ? फूल में क्या है? कुछ भी तो नहीं है। कुछ थोड़े से केमिकल्स क्लोरोफिल और है क्या ? एक फूल के सौन्दर्य की तारीफ पर धर्मगुरु कहेगा, है क्या इसमें ? थोड़े से रंग हैं, थोड़े से रसायन हैं और है क्या ? एक कविता को धर्मगुरू के सामने रखें, एक काव्य को। वह कहेगा है क्या ? कुछ शब्दों का जोड़ है और कुछ भी नहीं। अगर जीवन को हम इस भांति देखना शुरू करें तो जरूर असर हो जायगा। पाया जायगा जीवन में कुछ भी नहीं है।

तीन हजार बरसों से विश्लेषण ने आदमी को बड़े धोखे में डाला है। हर चीज को तोड़कर देखा जा सकता है और कुछ भी नहीं पाया जायगा। एक जिन्दा आदमी को हम काट डालें और खोजें क्या है इसमें? तो हड्डियां मिलेंगी, मांस मिलेगा, आदमी कहीं भी नहीं मिलेगा। एक मूर्ति को काट पीट डालें तो पत्थर के टुकड़े मिलेंगे, कोई सौन्दर्य की प्रतिमा खोजे से भी नहीं मिलेगी। एक कविता को तोड़ डालें तो शब्द मिलेंगे, कोई काव्य (poetry) नहीं। एक सुन्दर चेहरे को काट पीट डालें तो क्या मिलेगा भीतर? इस चीजों को खंड खंड करके टुकड़ों में तोड़ने की कला ने सारे जीवन को असार सिद्ध करने की तरकीब धर्मगुरुओं के हाथ में दे दी है। किसी भी चीज को तोड़ फोड़ डालें और पूछें क्या है इसमें? प्रेम में क्या है? सौन्दर्य में क्या है? स्वाद में क्या है? रस में क्या है? किसी भी चीज में कुछ नहीं है, अगर विश्लेषण किया जाय तो। बात असल में यह है कि विश्लेषण में केवल क्षुद्र ही हाथ लगता है। जो सूक्ष्म है वह विलीन हो जाता है। उसका कोई दर्शन नहीं हो पाता है। विश्लेषण करने में, जो व्यर्थ है वही हाथ लगता है, जो सार्थक है वह तिरोहित हो जाता है और तब हम कह सकते हैं कोई सार नहीं। जीवन क्या है? जन्मना, रोटी कमाना, बच्चे पैदा करना और फिर मर जाना, और जीवन क्या है? विश्लेषण पूरा हो गया और जीवन में कुछ भी हाथ नहीं लगा। तो जीवन है असार। फिर यही तरकीब धर्मगुरुओं की वैज्ञानिकों के हाथ लग गयी क्योंकि तीन हजार वर्षों में धर्मगुरुओं ने विश्लेषण में, आदमी को दीक्षित कर दिया। फिर विज्ञान का जन्म हुआ तो उसके हाथ में विश्लेषण की तरकीब लग गयी। उसने कहा, कहां है आत्मा आदमी में? हम तो काट पीट कर देखते हैं, कहीं मिलती नहीं। आत्मा नहीं है। उन्होंने कहा था संसार असार है, वैज्ञानिकों ने कहा आत्मा भी असार है क्योंकि उसका भी विश्लेषण करते हैं तो पायी नहीं जाती। खोज बीन करते हैं, चीजें तोड़ते हैं, कुछ भी नहीं मिलता है। धर्मगुरुओं को पता नहीं था कि जिस तोड़ने की तरकीब से वे जीवन को असार कह रहे हैं उसी तोड़ने की तरकीब से एक दिन धर्म भी असार हो जायगा। कोई आत्मा नहीं है क्योंकि तोड़ने से उसका पता नहीं चलता है।

एक संगीतज्ञ था। उसने अपनी वीणा पर एक गीत गाया। वह सुन्दर था। एक वैज्ञानिक भी वहां बैठा सुनता रहा। उसने सोचा, जरूर वीणा में कोई बात होनी चाहिए। रात जब वह संगीतज्ञ सो गया तो वह वैज्ञानिक उसके घर में घुस गया। उसने पूरी वीणा तोड़ के देख डाली, तार तार कर

डाला, टुकड़े टुकड़े कर डाले। हाथ में कुछ तार लगे, कुछ टुकड़े लगे लकड़ी के, कोई संगीत पकड़ में नहीं आया। उसने कहा, सब असार है। मालूम होता है धोका था संगीत। संगीत था ही नहीं। मुझे धोखा दिया गया है। वीणा को पूरी तरह खोज लेता है तो भी कहीं कोई संगीत मिलता नहीं। जीवन का सत्य विश्लेषण से नहीं मिलता है, संश्लेषण (Synthesis) से मिलता है। जीवन उसके खंड खंड, टुकडों में नहीं, उसकी परिपूर्णता (wholeness) में है। सौंदर्य भी परिपूर्णता में है, सत्य भी, जीवन भी, आनंद भी। जो लोग खंडों में तोड़ते हैं वे वंचित हो जाते हैं। उस वंचित रह जाने को वे जीवन पर थोप देते हैं कि जीवन में कुछ भी नहीं है। और जब जीवन में कुछ भी नहीं तो छोड़ो इस जीवन को, भागो इस जीवन से, त्यागो इस जीवन को। फिर खोजो किसी परमात्मा को, खोजो किसी मोक्ष को, जहां सब कुछ होगा। लेकिन अगर ये विश्लेषण करनेवाले लोग किसी दिन मोक्ष पहुंच भी गये, जैसा कि कभी हुआ नहीं आज तक.कि वे पहुंच गये हों, लेकिन अगर किसी दिन मोक्ष पहुंच गये तो पायेंगे कि मोक्ष भी असार है। वहां भी कुछ नहीं है। क्योंकि मोक्ष में वे क्या पायेंगे। जो भी मिलेगा उसका विश्लेषण यह सिद्ध कर देगा कि यहां भी कुछ नहीं है।

बर्ट्रेन्ड रसल ने एक बार यह कहा कि मैं सोचता हूं कि कहीं मुझे मोक्ष मिल गया तो मोक्ष कैसा होगा ? वहां शांति होगी, न अशान्ति। वहां न अंधकार होगा, न प्रकाश। वहां न प्रेम होगा, न घृणा, वहां होगा क्या ? और मोक्ष से लौटने का कोई उपाय नहीं है। मोक्ष में प्रवेश द्वार (Entrance) तो होता है, गमन पथ (Exit) नहीं होता। वहां भीतर जा सकते हैं बाहर आने का कोई मौका नहीं। तो बर्टेन्ड रसल ने कहा "वहां करेंगे क्या ?" वहां जो लोग पहुंच गये हैं, अबतक बहुत घबरा गये होंगे। बहुत ऊब (Boredom) पैदा हो गयी होगी। वहां करेंगे क्या ? वहां कोई अभाव नहीं है। कोई दुख नहीं है। कोई पीड़ा नहीं है। वहां कोई कामना नहीं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं। वहां लोग हैं और बने रहेंगे, अनन्त तक बने रहेंगे। नहीं, बर्ट्रेन्ड रसल ने कहा मेरी तबियत बहुत घबराती है। ऐसे मोक्ष से तो नर्क ही बेहतर, वहां कुछ करने को तो होगा। यह मोक्ष का विश्लेषण हो गया। रसल ने मोक्ष का विश्लेषण कर लिया। नहीं कुछ वहां भी दिखायी नहीं पड़ता। महावीर, बुद्ध धोखे में पड़ गये मालूम होता है। शायद वह मोक्ष का विश्लेषण नहीं कर पाये। रसल ने मोक्ष का विश्लेषण किया तो पाया कि वहां भी कुछ नहीं हो सकता है।

मनुष्य विश्लेषण की छाया में देखता है, आज तक। यह मैं पहला सूत्र

आपसे कहना चाहता हुं कि अगर जीवन को एक मंदिर बनाना है तो जीवन को एक संश्लेषण की दृष्टि (Synthetic attitude) से देखने की क्षमता पैदा करनी होती है, विश्लेषण की दृष्टि से नहीं। जब भी हम चीजो को तोड़ देते हैं तो स्मरण रहे, चीजें होती हैं अपनी पूर्णता में और कोई भी चीज खंड़ों का जोड़ नहीं होती है, खंड़ों के जोड़ से ज्यादा होती है। एक कविता शब्दों का जोड़ ही नहीं होती, शब्दों के जोड़ से कुछ ज्यादा होती है। एक चित्र रंगों का जोड़ ही नहीं होता है, रंगोंके जोड़ से कुछ ज्यादा होता है। एक संगीत केवल वीणा और वीणावादक की अंगुलियां नहीं होती, कुछ और भी होता है। और वह जो 'कुछ और' है, वही रहस्यपूर्ण, वही अदृश्य, वही न दिखायी पड़नेवाला जीवन का रस है, जीवन का आनन्द है। जीवन में प्रभु है। जीवन जोड़ से कुछ ज्यादा है। गणित में जोड़ होते हैं, दो और दो चार होते हैं। जीवन में दो और दो चार होते हैं। दो ओर दो के बाद चार तो हो जाते हैं और एक नयी चीज पैदा हो जाती है जो दो और दो में होती ही नहीं। जो उनके मिलने में होती है। अगर मैं किसी से प्रेम करता हूं और उसे अपने हृदय से लगा लूं और एक ओर एक वैज्ञानिक विश्लेषण करे कि दो आदमियों की छाती की जब हड्डियां मिलती हैं तो आनन्द कैसे होता होगा ? तो हड्डियों के मिलने से कैसे आनन्द हो सकता है ? कैसे प्रेम हो सकता है ? हड्डियों के मिलने से हो सकता है कोई विद्युत घर्षण से पैदा हो जाती हो। यह हो सकता है कि हड्डियों को एक दूसरे में गर्मी मिल जाती हो। लेकिन आनन्द का क्या सम्बन्ध है, प्रेम का क्या सम्बन्ध है ? तो अगर वैज्ञानिक किसी आलिंगन का विश्लेषण करेगा तो पायेगा कि यह बेवकूफी है, बिल्कुल। कुछ नहीं मिल सकता, इसमें कुछ हो नहीं सकता।

लेकिन जो प्रेम में हैं वे जानते हैं कि आलिंगन में हड्डी होती ही नहीं, शरीर मौजूद ही नहीं रह सकते। जब कोई किसी को प्रेम से अपनें हृदय के निकट लाता है तो शरीर मौजूद ही नहीं रह जाते। शरीर अनुपस्थित हो जाते हैं। कोई और चीज उपस्थित हो जाती है जिसका शरीर से कोई वास्ता नहीं। दिखायी पड़ते हैं कि दो शरीर निकट आये, लेकिन निकट कोई चीज आती है। लेकिन शरीर के विश्लेषण से आत्मा को नहीं खोजा जा सकता है। तो वह झूठी हो जाती है, असत्य हो जाती है, असार हो जाती है। धर्म ने यह काम किया पहले कि सारे जीवन को असार सिद्ध करने के लिए हर चीज का विश्लेषण कर दिया। फिर वैज्ञानिकों के हाथ में विश्लेषण की ताकत आ गयी। उन्होंने सब

चीजों का विश्लेषण करके धर्म को भी असार कर दिया और अब आदमी खड़ा रह गया है। उसके हाथ में कुछ नहीं बचा है, न प्रेम, न परमात्मा, न संसार, न मोक्ष। सब चीजों का विश्लेषण हो गया है और आदमी खाली हाथ खड़ा हो गया है। यह आदमी अगर दुख से नहीं भर जाये, यह आदमी अगर जीवन के प्रति उदासी से न भर जाये, अगर यह आदमी जीवन को अन्त करने के लिए तत्पर न होने लगे तो और क्या करे ?

विश्लेषण ने आदमी को आत्महत्या सिखायी है। आत्महत्या दो तरह से हो सकती है। या तो एक आदमी सीधे एकदम से आत्महत्या कर ले, या दूसरा आदमी फुटकर-फुटकर आत्महत्या करे। एक आदमी सीधा जाये और पहाड़ से कूद जाये और मर जाये, एक आदमी छुरी मार ले, जहर पी ले या एक आदमी धीरे धीरे मरे जैसे– पहले घर छोड़े, फिर वस्त्र छोड़े, फिर समाज छोड़े, सन्यासी हो जाय। धीरे धीरे मरने (Gradual suicide) के नाम को हम अबतक संन्यास कहते रहे हैं। धीरे धीरे मरो। और आदमी इस मरने की प्रक्रिया में जितना आगे निकल जाये, जितना सूख जाये, जितना सूखी पत्तियों की भांति हो जाये, जीवन के आनन्द और जीवन के हर रस को गन्दा करने की क्रूरता से भर जाए, उस आदमी को हम उतना ही आदर देते हैं। धर्म के तथाकथित झूठे प्रभाव में हमने जीवन को नहीं मृत्यु को आदर दिया है, और जो समाज मृत्यु को आदर देता हो उसके जीवन में आनन्द कैसे हो सकता है। आत्मघात को हमने सम्मान दिया है। हमने अबतक केवल मृत्यु के देवता के मंदिरों की पूजा की है। हमने दिये जलाये हैं मृत्यु के सामने, जीवन के सामने नहीं। धर्म के हाथों में आदमी को व्यक्तिगत आत्महत्या की सूझ मिली, और अब विज्ञान के हाथों में सामूहिक आत्महत्या का उपाय मिल गया है। धर्म ने कहा छोड़े जीवन को, आवागमन से मुक्ति चाहिए, जीवन ठीक नहीं, शुभ नहीं, पाप है। यह एकमात्र पाप है जीवित होना। मैं पिछले जन्मों के पापों के कारण जीवित हूं। आप भी पिछले जन्म के पापों के कारण जीवित हैं। जिस दिन पाप नहीं रह जायेंगे जीवन की कोई जगह नहीं रह जायगी। आप जीवित नहीं रहेंगे। आप जीवन में नहीं होंगे। जो लोग पाप से मुक्त हो जाते हैं वे जीवन से भी मुक्त हो जाते हैं। जीवन और पाप पर्यायवाची हैं, एक ही अर्थ रखते हैं। जीवित होना और पापी होने का एक ही मतलब है। क्योंकि जो पाप से मुक्त हो जाते हैं वे जीवन से भी मुक्त हो जाते हैं। तो जीवन है पाप, फिर क्या करें हम ? जीवन से हटें। जीवन को छोड़ें। जीवन से मुक्त हो। अवागमन से बाहर जाने की कोशिश करें। जीवन से हट जाने की सारी कोशिश

मृत्यु में जाने की कोशिश ही हो सकती है और कोई विकल्प (Alternative) नहीं। या तो जीवन की राह और आनन्द में प्रवेश है और या फिर जीवन से पीठ फेरना हैं, जीवन से भागना है, जीवन से हटना है। जिसे हम संन्यास कहते हैं वह मृत्यु की ओर मुख करने का नाम है। जीवन की ओर पीठ फेर कर, मृत्यु की तरफ गति करने का नाम है। धर्मों ने व्यक्तिगत आत्मघात सिखाया। विज्ञान और आगे बढ़ गया। असल में विज्ञान हर चीज को सामूहिक बनाने का उपक्रम है। एक व्यक्ति जिसका उपयोग करता है, विज्ञान की कोशिश है कि सभी उसका उपभोग कर सके। अकबर के महल में जितनी रोशनी होती थी, विज्ञान ने व्यवस्था कर दी कि उतनी रोशनी अब झोंपड़े में भी हो सके। अकबर जितना अच्छा भोजन करता था विज्ञान कोशिश करता है कि हर आदमी उतना अच्छा भोजन कर सके। सम्राटों के पास जितने तीव्र वाहन थे, विज्ञान ने कोशिश की कि दरिद्रतम आदमी के पास भी उतने तीव्र वाहन हो जाय। विज्ञान जीवन की घटनाओं को सामूहिक करने की कोशिश करता है। उसने मृत्यु को भी सामूहिक करने की व्यवस्था कर दी है। एक एक आदमी क्यों आवागमन से मुक्त हो, सारी पृथ्वी एक ही साथ आवागमन से मुक्त क्यों न हो जाय ? इसलिए हाईड्रोजन बम और एटम बम का इन्तजाम किया। सभी को इकट्ठा मोक्ष क्यों न मिल जाय ? सभी जीवन से छूट क्यों न जायें ? जब जीवन दुख है तो जीवन को बचाने की जरूरत क्या है, और जब जीवन पीड़ा है और उससे छुटकारा ही एकमात्र लक्ष्य है तो सभी सामूहिक रूप से क्यों न प्रवेश पा जायें ? एक एक आदमी कबतक मुक्त होता रहेगा ? एक एक आदमी को मोक्ष जाने में कितना समय लग जायगा ? इकठ्ठा, टोटल हम क्यों न मुक्त हो जायं ?

तो विज्ञान ने मृत्यु को भी सामूहिक (collective) करने का उपाय कर दिया है। इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। विश्लेषण मृत्यु पर ले ही जाता है। चाहे धार्मिक विश्लेषण हो चाहे वैज्ञानिक विश्लेषण हो। क्योंकि विश्लेषण का मतलब है तोड़ना, तोड़ना, तोड़ना, खंड, खंड करना। जो चीज तोड़ी जाती है, मर जाती है। जिसे हम खंड खंड करते हैं वह नष्ट हो जाती है। जीवन का अर्थ है जोड़ना जोड़ना, जोड़ना, अखंड करना। मृत्यु का अर्थ है तोड़ना। आप मरते हैं तो होता "क्या है आपके भीतर, जो चीज संश्लेषित थी वह टूट जाती है अपने तत्वों में। आपके भीतर जो चीज थी वह खंड खंड में बंट जाती है और क्या होता है ? मृत्यु का अर्थ और क्या है ? मृत्यु का अर्थ है जो जुड़ा था वह बिखर गया, जो संयुक्त था वह वियुक्त हो गया है, जो साथ साथ था वह अलग अलग हो गया है।

जीवन की प्रक्रिया है अखंडता में और संश्लेषित होने में। और मृत्यु की प्रक्रिया है खंड खंड होने में, विशिष्ट होने में, टूट जाने में। जो भी विश्लेषण का मार्ग पकड़ेगा चाहे धर्म, चाहे विज्ञान, अन्त में मृत्यु हाथ में आयेगी। धार्मिकों ने भी एक तरह की मृत्यु हाथ मे लादी थी। वैज्ञानिकों ने दूसरी तरह की मृत्यु हाथ में ला दी है लेकिन जीवन अब तक हाथ में नहीं आ सका। न तो जीवन का धर्म पैदा हुआ है, न जीवन का विज्ञान पैदा हुआ है। जोड़ने का, इकठ्ठेपन का, समग्रता का, और जीवन का कोई भान अबतक नहीं हो सका। इसलिए हम दुख में जीते हैं, इसलिए हम पीड़ा में जीते हैं। इसलिए हम अन्धकार में जीते हैं। इसलिए जीवन के साथ हमारा कोई संपर्क नहीं हो पा रहा है। न हम आनन्द को जान पाते हैं, न आलोक को। हम कुछ भी नहीं जान पाते। हम बिना जाने जीते हैं और बिना जाने मर जाते हैं।

तो पहली बात आपसे कहना चाहता हूं कि आपको जीवन का मंदिर बनाने वाला बनना है, पत्थर तोड़ने वाला नहीं, रोटी रोजी कमाने वाला नहीं क्योंकि अपमानजनक हैं ये बातें कि कोई आदमी सिर्फ रोजी रोटी कमाता है या पत्थर तोड़ता है। उसे पता ही नहीं उस आनन्द का, उस गीत का जो परमात्मा के मंदिर के बनाने में उपलब्ध होता है। जो किसी सृजन में उपलब्ध होता है। जो खुद के जीवन को रोज रोज बनाने में उपलब्ध होता है। उसे पता ही नहीं उस बड़े समन्वय का जहां भीतर का जीवन और नये नये जोड़ों को उपलब्ध होता है—रोज नया शिखर है, रोज नयी ऊंचाई छूता है। भगवान कहीं बना बनाया (Ready made) नहीं बैठा है कि आप पहुंच गये और मुलाकात हो गयी। भगवान निर्मित करना होता है अपने भीतर। भगवान को जानना और पहचानना निरन्तर सत्ता सृजन (constant creativity) से गुजरने का नाम है। जो अपने जीवन को नये नये संयोगों में जोड़ता है, श्रेष्ठतर संयोगों में जोड़ता है और जोड़ता चला जाता है, उस परम एकता (ultimate unity) तक, जिसके आगे फिर कोई जोड़ नहीं रह जाता, कोई समन्वय नहीं रह जाता, उस दिन वह जानता है कि परमात्मा क्या है। जैसे हम एक मंदिर बनाते हैं तो नींव बहुत बड़ी भरना पड़ती है। फिर हम ईंटें जोड़ते चले जाते हैं। फिर मंदिर ऊपर उठते लगता है और छोटा होने लगता है। शिखर पर पहुंचकर फिर बहुत ईंटें नहीं रह जातीं, एक ही ईंट रह जाती है। छोटा होता चला जाता है शिखर। फिर जहां अकेली ईंट रह जाती है, वहीं शिखर आ जाता है।

जीवन के मंदिर में बड़ी विस्तृत भूमि होती है, बुनियाद में, आधार में। फिर जोड़ते चलते हैं हम और छोटी इकाई और छोटी इकाई पैदा होती चली जाती

है । जिस दिन जोड़ आखिरी हो जाता है उस दिन जिसका अनुभव होता है वही आत्मा है । मनुष्य के भीतर जो श्रेष्ठतम एकता पैदा होती है, जो महानतम एकता पैदा होती है, जो बड़े से बड़ा समन्वय पैदा होता है वही जीवन के देवता का अनुभव है । लेकिन हम तो जीवन को तोड़ते हैं । हम तो एक मंदिर में जाकर कह सकते हैं कि क्या है यहां ? कुछ ईंटें लगा दी हैं और जोड़ दिया गया है और क्या है ? कपड़े को हम कह सकते हैं कि क्या है इस कपड़े में ? कुछ भी तो नहीं है, कुछ धागे आड़े और सीधे डाल दिये हैं और कुछ तो नहीं है । कपड़े सिर्फ धागे नहीं हैं, क्योंकि धागे से कोई शरीर नहीं ढंक सकता हैं । कपडे धागे से कुछ ज्यादा हैं क्योकि धागे जो नहीं करते हैं वह कपड़े करते हैं । नहीं तो आदमी क्या पागल था वह धागे से ही काम चला लेता । कपड़े का कोई संगठन है । कोई समन्वय है, कोई जोड़ है और उस जोड में कुछ नयी उपयोगिता पैदा हो जाती है, कोई नया अर्थ पैदा हो जाता है । वह जो नया अर्थ है उसकी तलाश, उसकी खोज ही धर्म है । लेकिन निषेध के धर्म यह नहीं कर पाये । उन्होंने मनुष्य को मरना सिखाया है, जीना नहीं । और जो आदमी जितनी कुशलता से मर सकता है उसको उतना सम्मान दिया है । जो आदमी मरने में बड़ा अग्रणी हो सकता है उसे शहीद कहा है । लेकिन जो जीवन को जीता है कुशलता से उसे आज तक कोई शहीद कहने वाला नहीं मिला है । बदल देने चाहिए ये मूल्य । मरने वाले को शहीद कहने की क्या जरूरत है लेकिन जो जीते हैं और जीवन को पूरे अर्थों में जीते हैं वे ही शहीद हैं । मरना बहुत आसान है, जीवन बहुत कठिन है क्योंकि मरने में सिर्फ मरना पड़ता है और कुछ भी नहीं करना पड़ता है । जीने में बहुत कुछ करना पड़ता है । तोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि सिर्फ तोड़ना पड़ता है । जोड़ना बहुत कठिन है क्योंकि जोड़ने के लिए कला चाहिए । तोड़ने के लिए तो कोई भी तोड़ सकता है । मन्दिर गिराना हो तो हम किन्हीं बड़े कारीगरों को खोजने नहीं जाते । गांव का कोई भी मजदूर यह काम कर देगा । लेकिन एक मंदिर बनाना हो तो गांव के मजदूर काम नहीं देते । हमें किसी बड़े शिल्पशास्त्री को खोजना पड़ता है जो बनाना जानता हो, बनाने की कला जानता हो, जो जोड़ने की कला जानता हो ।

अबतक धर्म के नाम पर हमने केवल तोड़ना सिखाया है, छोड़ना सिखाया है, भागना सिखाया है । यह कोई भी कर सकते हैं । इसके लिए कोई जीवन की कला जानना जरूरी नहीं है । लेकिन वह धर्म अबतक पैदा नहीं हो सका जो जोड़ना सिखाये। जीवन का शिल्प जीवन की कला सिखाये, जीवन को निर्माण करने का सूत्र सिखाये।

पहला सूत्र जो मुझे आपसे कहना है वह यह है कि जीवन को विश्लेषण की दृष्टि से देखना बन्द कर दें अन्यथा आपके हाथ में राख के सिवाय कुछ भी नहीं लगेगा। जीवन को देखें संश्लेषण की दृष्टि से और आपके हाथ रस उपलब्ध होना शुरू हो जायगा। सब कुछ इसपर निर्भर करता है कि आप कैसे देखते हैं। जीवन वही हो जाता है जो आपके देखने की दृष्टि हो जाती है।

जापान से एक आदमी ने अफ्रीका के लिए यात्रा की। उसी जहाज से एक अमरीकी भी यात्रा कर रहा था। वे दोनों अफ्रीका पहुंचे वे दोनों एक ही जहाज से पहुंचे। एक ही समय पहुंचे। एक ही काम से पहुंचे यह उन्हें पता नहीं था। वह जो अमरीकी युवक था वह भी एक बहुत बड़ी जूते की कम्पनी का बेचने वाला एजेन्ट था, सेल्समैन था। वह भी अफ्रीका गया था कि अपनी कम्पनी के जूते वहां बिकने की व्यवस्था करने। और वह जापानी भी जापान की एक जूता बनाने वाली कम्पनी का विक्रेता था, वह भी इसीलिए गया हुआ था। वह दोनों ही एक ही जहाज से अफ्रीका में उतरे। रास्तों से गुजरकर वे अपने होटल तक पहुंचे। एक ही होटल में ठहरे। एक ही रास्ते से गुजरे। अमरीकी ने जाकर वहां से अमेरिका केबल किया : 'मैं लौटती जहाज से वापस आ रहा हूं, अफ्रीका में जूते नहीं बिक सकेंगे क्योंकि यहां कोई जूता पहनता ही नहीं है। सब लोग नंगे पैर हैं। यहां हमारा आना सब व्यर्थ गया, मैं वापस लौट रहा हूं। जापानी ने भी उसी वक्त जापान केबल किया कि एक लाख जूते की जोड़ी फौरन भेज दें, यहां बिक्री की बहुत संभावना है। 'कोई भी जूता नहीं पहने हुए है। एक भी आदमी के पास जूता नहीं है। फौरन एक लाख जोड़े तो भेज ही दें क्योंकि एकदम बिक्री शुरू हो जायगी। अमेरिकी वापस लौट गया क्योंकि कोई आदमी जहां जूता ही नहीं पहनता वहां कौन खरीदेगा ? जहां जूते पहनने का रिवाज ही नहीं वहां जूते का सवाल ही क्या उठाना है। इन दोनों की दृष्टि भिन्न भिन्न थी। एक ने बाजार खोज लिया, एक ने बाजार खो दिया। जीवन के बाजार में हम सब उतरते हैं। कुछ लोग बाजार खो देते हैं, कुछ लोग बाजार उपलब्ध कर लेते हैं। जो लोग विश्लेषण से देखते हैं उन्हें जीवन असार दिखायी पड़ता है। वे फौरन केबल करते हैं परमात्मा को कि आवागमन से छुटकारा दिलाओ, हम वापस आना चाहते हैं, जीवन व्यर्थ है, यहां कोई सार नहीं। हे पतितपावन हमें जल्दी वापस बुला लो। यहां हम नहीं रहना चाहते। लेकिन जो जीवन को संश्लेषण की दृष्टि से देखते हैं वे परमात्मा से कहते हैं "धन्यवाद है तुझे कि जीवन में हमें आने का मौका तूने दिया और इस योग्य समझा। जीवन में बड़ा आनन्द है, जीवन में बड़े मौके हैं,

जीवन एक बड़ा अवसर है। अनुग्रहीत हैं हम तेरे कि तूने हमें इस योग्य समझा और इस जीवन में भेजा।

रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है और उस गीत में कहा है कि हे परमात्मा मैं किन शब्दों मे तुझे धन्यवाद दूं कि तूने मुझे जीने का मौका दिया। तेरा जीवन बहुत अद्‌भुत था और अगर कुछ दुख भी मुझे उस जीवन में मिले होंगे तो वह मेरी भूल से मिले होंगे, तेरे जीवन के कारण नहीं। तेरा जीवन तो बहुत धन्यवाद का था और मेरी एक ही प्रार्थना है कि अगर तूने मुझे इस जीवन में अपात्र न समझ लिया हो तो बार बार मुझे जीवन के दर्शन का मौका देना। मैं बार बार लौट आना चाहता हूं। शायद अगली बार में जाऊं तो ज्यादा पात्र होकर जाऊं। जो भूलें मैंने आज कीं वह कल न करूं। जीवन तूने दिया, धन्यवाद, और आगे भी जीवन देना इसकी प्रार्थना है।

इस हृदय को मैं धार्मिक हृदय कहता हूं। इस हृदय को मैं जाननेवाला हृदय कहता हूं। इस हृदय ने जीवन के मन्दिर को बनाया और जाना। जीवन का निषेध नहीं– जीवन का परिपूर्ण स्वीकार, जीवन क्रांति की दिशा में पहला सूत्र है। जो लोग अपने जीवन को बदलना चाहते हैं, पहले तो उन्हें जीवन से मित्रता साधनी होगी, शत्रुता नहीं। पहले तो उन्हें जीवन का आलिंगन लेना होगा, पीठ नहीं फेर लेनी होगी। पहले तो उन्हें जीवन के रस में विभोर होना होगा। लेकिन हम तो जीवन को देखते हीं नहीं। सूरज उगता है, आपने कभी उसे धन्यवाद दिया है याकि चल पड़े परमात्मा की खोज में और चल पड़े आनन्द की खोज में। सुबह आंख खुलती है और जीवन आपके भीतर करवट लेता है। कभी आपने धन्यवाद दिया है जीवन को कि एक दिन मुझे और मिला है, अनुग्रहीत हुआ मैं। कृतज्ञता ज्ञापन की कभी? आकाश में चांद तारे होते हैं। मुक्त, बिना आपसे कुछ लिए रोज निकल जाते हैं। फूल बिना कुछ आपसे मांगे रोज खिल जाते हैं। जीवन बिना किसी चीज के व्यय किये आपके भीतर आनन्द की बहुत खबर लाता हैं लेकिन हम वे लोग हैं जो जीवन में देखते ही नहीं। न हवाओं में, न चांद तारों में, न सूरज में, न आदमी की आखों में, न बच्चों की आखों में, न स्त्री की आंखों में, न बूढों की आंखों में। हम तो जीवन को देखते ही नहीं। हम तो ऐसे जीते हैं जैसे एक बोझ ढोते हों। हम तो ऐसे जीते हैं जैसे एक सजा काटते हों। मैं कारागृहों में गया था एक बार। वहां मैंने लोगों से पूछा-कैसे जी रहे हो? उन्होंने कहा, जीने का कोई सवाल ही नहीं है। हम केवल सजा काट रहे हैं। मैंने कहा– अगर तुम ही सजा काटते हो तो भी ठीक था। मैं बाहर की बड़ी

जेल से आ रहा हूं वहां भी लोग सजा ही काट रहे हैं। वहां भी कोई जी नहीं रहा है क्योंकि उन्हें जीने के प्राथमिक सूत्रों का भी कोई बोध नहीं हैं ।

पहला सूत्र है जीवन के प्रति अहोभाव, जीवन के प्रति अनुग्रह का भाव और जिस दिन आप अनुग्रह से देखेंगे उसी दिन वे द्वार खुल जायेंगे जो बन्द रहे हैं अब तक। और आप हैरान हो जायेंगे कि यह भी मौजूद था जो मैंने कल तक देखा ही नहीं। और मैं क्या देख रहा था, दो कैदी एक कारागृह में बन्द थे। वे दोनों कारागृह के सींखचे पकड़े हुए खड़े थे। सींखचे के सामने ही एक गन्दा डबरा था जिसमें तरह तरह के कीड़े मकोड़े पल रहे थे और जिससे बेहद बदबू उठ रही थी। एक कैदी उस डबरे को देखे जा रहा था और गाली दे रहा था कि कैद में रखा वह तो ठीक, लेकिन इस डबरे के पास। दूसरा कैदी भी उसके पास ही खड़ा था। उसकी आंखें आकाश की तरफ उठी थीं। आकाश से पूर्णिमा का चांद निकल आया था और उससे अमृत की वर्षा हो रही थी और कैदी ने अपने बगल के पड़ोसी को हिलाया और कहा पागल। लेकिन चांद भी है, तू चांद को देखता ही नहीं। किसने कहा तू डबरे को देख। डबरा है यह तो ठीक, लेकिन किसने कहा कि तू डबरे को देख। तू खुद ही चुनाव कर रहा है डबरे को देखने का क्योंकि चांद भी मौजूद है और पागल ! जब मैंने चांद को देखा और चांद को देखकर जब मेरी आंखें डबरे पर गयी तो मैं हैरान हो गया। वह डबरा भी बदल गया क्योंकि उसमें चांद की प्रतिछाया बन रही थी। उस डबरे में मुझे चांद दिखायी पड़ा। क्योंकि चांद को मैंने देखा, चांद से मैं परिचित हुआ फिर उस डबरे में मुझे कीड़े मकोड़े ख्याल नहीं आये, चांद की प्रतिछवि ही मुझे दिखायी पड़ी। और तू डबरे को देख रहा है। और मैं जानता हूं कि अगर तू चांद को भी देखेगा तो डबरे की ही प्रतिछवि चांद में दिखायी पड़ेगी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है।

हमारी दृष्टि हमारे जगत को निर्मित करती है। धर्मगुरुओं ने मनुष्य के जगत को विषाक्त कर दिया असार दुखपूर्ण कहकर। और उन्होंने जो कहा वह हो भी गया। उनका अभिशाप फलित हो गया। क्या हम इस दुनिया को ऐसे ही जीते रहें ? या जीवन की दृष्टि को बदलें ? परमात्मा अगर कहीं है तो जीवन के मंदिर में विराजमान है और जिन्हें भी उस मंदिर में प्रवेश करना है वे अहो भाव, जीवन के प्रति धन्यता का बोध, जीवन के प्रति कृतज्ञता का बोध लेकर ही प्रवेश कर सकते हैं। पहली सीढ़ी है जीवन के प्रति अहोभाव और उस सीढ़ी तक पहुंचने की दृष्टि है संश्लेषण और समन्वय,

विश्लेषण नहीं। खंड खंड कर देना नहीं। अखंड से देखें खंड खंड से नहीं। जो अखंड को देखता है वह धार्मिक है, जो खंड को देखता है अधार्मिक है।

एक छोटी सी कहानी और कहकर मैं अपनी बात पूरी करुंगा। बड़ी छोटी कहानी है।

स्वर्ग में, स्वर्ग के एक रेस्त्रां में बुद्ध, कन्फ्यूसियस और लाओत्से तीनों बैठकर गपशप कर रहे हैं। स्वर्ग में भी रेस्त्रां होते हैं क्योंकि जो आदमी जमीन से जाते है वह जमीन की बहुत सी चीजें वहां ले जाते हैं। नहीं ले जाते तो वहां बना लेते हैं। फिर बुद्ध, कन्फ्यूसियस और लाओत्से तोनों ही, पृथ्वी पर शायद ही किसी रेस्त्रां में गये हों। जो जमीन पर चूक गये, सोचा होगा स्वर्ग में पूरा कर लें। वे तीनों रेस्त्रां में बैठकर गपशप करते हैं। एक अप्सरा एक बहुत सुन्दर सुराही में जीवन का रस लेकर आती है। बुद्ध यह देखते ही कि जीवन का रस है, आंख बन्द कर लेते हैं और कहते हैं, "बस जीवन दुख और असार है। हटो यहां से अन्यथा मैं यहां से हट जाऊंगा।" लेकिन कन्फ्यूसियस कहता है,–"थोड़ा सा चख कर देख लूं कि कैसा है क्योंकि बिना चखे कुछ भी कहना उचित नहीं। एक घूंट देख लूं कैसा है क्योंकि बिना घूंट लिए कोई निर्णय देना उचित नहीं।" छोटी सी प्याली में एक घूंट जीवन का रस लेकर वह चखता है और कहता है, "नहीं कोई सार नहीं है, कोई सार नहीं है।" वह भी आंख बन्द कर लेता है। लाओत्से कहता है कि पूरी सुराही मुझे दे दो क्योंकि जबतक मैं पूरी को नहीं चख लूं कुछ भी कहना उचित नहीं। हो सकता है, जो एक घूंट में न हो वह पूरे घूंट में हो। हो सकता है जो खंड में न हो वह अखंड में हो। तो मैं पूरे ही जीवन को पी जाऊं फिर कुछ कहूं। पूरी सुराही पी जाता है और नाचने लगता है और बुद्ध से कहता है कि तुमने बिना चखे कहा कि कुछ भी नहीं है। और कन्फ्यूसियस तुमने एक घूंट पिया और कहा व्यर्थ है। लेकिन जीवन तो उसकी पूर्णता में ही जाना जा सकता है। और मैं तुमसे कहता हूं, जो जीवन को नहीं जानता वही कहता है व्यर्थ है। वही कहता है असार है। और मैं जीवन को जानकर कहता हूं कि सारभूत जो कुछ है सब जीवन में है। परमात्मा जीवन में है और मोक्ष भी। लेकिन पूरे जीवन को जो जानते हैं वे ही केवल इस सत्य को अनुभव कर पाते हैं। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना ही प्रार्थना है, पूजा है। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना एक संन्यास है, साधुता है। जीवन को उसकी पूर्णता में जान लेना ही मनुष्य का अंतिम और चरम लक्ष्य, अनन्य और परम उद्देश्य है।

# यह अधूरी शिक्षा ?

( एक प्रवचन )

संकलन : **प्रेमचन्द माहेश्वरी**

मनुष्य जाति के ऊपर जो बड़े से बड़े दुर्भाग्य आये हैं उनमें सबसे बड़े दुर्भाग्य वे हैं जिन्हें हम सौभाग्य समझते रहे हैं। सौभाग्य समझने के कारण उन दुर्भाग्यों से बचना भी सम्भव नहीं हुआ। उनको बदलना भी सम्भव नहीं हुआ। उनसे मुक्त होने का भी कोई उपाय नहीं किया गया, बल्कि सौभाग्य मानने के कारण, वरदान मानने के कारण हम अपने अभिशापों की जड़ों में भी पानी सींचते रहे हैं। और अब परिणाम में यह मनुष्य पैदा हुआ है जो हमारे सामने है। और जो निर्मित हुआ है वह हमारे चारों तरफ फैला हुआ है। उन बड़े दुर्भाग्यों में शिक्षा के नाम से जो चलता रहा है उसे मैं बड़े से बड़ा दुर्भाग्य मानता हूं। सुनकर निश्चित ही आपको हैरानी होगी, क्योंकि शिक्षा तो वरदान है। शिक्षित सज्जन तो धन्यभाग ही हो जाते हैं ऐसा ही अब तक हम मानते रहे हैं लेकिन क्या आपको पता है शिक्षा ने मनुष्य के जीवन को संतुलन और स्वास्थ्य नहीं दिया है बल्कि मनुष्य जीवन के सारे संतुलन (Balance)) को छीन लिया है और यह होना निश्चित ही था। क्योंकि जो हम अब तक शिक्षा से समझते रहे हैं उसमें कुछ बुनियादी भूलें हैं।

पहली बुनियादी भूल यह है कि हमने आदमी को केवल बुद्धि (Intellect) समझ लिया है। इससे ज्यादा झूठी और गलत बात नहीं हो सकती। आदमी अकेले बुद्धि नहीं है और शिक्षा महज बुद्धि की है। शेष पूरा मनुष्य अधूरा और अछूता छूट जाता है। शेष पूरा मनुष्य अविकसित छूट जाता है। केवल

बुद्धि विकसित होती है। यह वैसा ही है जैसे एक आदमी का सारा शरीर तो सूख जाय सिर्फ सिर बड़ा हो जाय, एक आदमी का सारा शरीर तो क्षीण हो जाय सिर्फ खोपड़ी बड़ी होती चली जाय। फिर वह आदमी केवल एक कुरूपता (ugliness) होगा। और वह आदमी चलने में भी असमर्थ हो जाएगा। उसका बड़ा सिर उसके पूरे शरीर के संतुलन में नहीं होगा तो उसका जीना कठिन हो जाएगा। शिक्षा के नाम पर यही हुआ है। हमने सोच लिया कि मनुष्य है केवल बुद्धि, केवल इंटलेक्ट। और तब हम पिछले तीन हजार वर्षों से मनुष्य की बुद्धि को ही विकसित करने के सब उपाय करते रहे हैं। बुद्धि विकसित हो गई लेकिन शेष सारा मनुष्य बहुत पीछे छूट गया। शेष मनुष्य तीन हजार वर्ष पीछे छूट गया और बुद्धि तीन हजार वर्ष आगे चली गई। इन दोनों के बीच जो तनाव और खाई पैदा हो गई है वही हमारे प्राण लिये ले रही है। इससे एक उल्टे ढंग की पंगुता (Inverted crippledness) पैदा हुई है। एक आदमी के पास सब होता है लेकिन आंखें नहीं होती तो हम उस आदमी को कहते हैं कि इसका एक अंग पंगु है, विकसित नहीं हुआ है। एक आदमी के पास सब होता है। उसके पास दो पैर नहीं होते तो उसे हम पंगु कहते हैं। इससे उल्टे तरह की पंगुता भी हो सकती है जिसका हमे ख्याल भी नहीं है। एक आदमी के पास कुछ न हो, केवल दो पैर हों तो वह आदमी इनवर्टेड क्रिपिल्ड है। वह उल्टे ढंग से पंगु हो गया है।

शिक्षा ने मनुष्य को स्वस्थ नहीं किया, पंगु किया है। केवल बुद्धि का विकास हुआ है और शेष अंग अविकसित रह गये हैं। बुद्धि बड़ी होती चली गई और जीवन के सब स्रोतों से उसके सम्बन्ध उसके नाते विच्छिन्न हो गये। हम सीखते क्या हैं? हम शिक्षा के नाम पर देते क्या हैं? जीवन की कोई शिक्षा देते हैं हम? कोई जीवन की कला सिखाते हैं? जरा भी नहीं। हम कुछ सभ्यता सिखाते हैं, कुछ गणित सिखाते हैं, कुछ भाषा सिखाते हैं, कुछ केमेस्ट्री-फिजिक्स सिखाते हैं, कुछ भूगोल इतिहास सिखाते हैं और इस सब सिखाने में हम सिखाते क्या हैं? हम शब्द ही सिखाते हैं। शब्द जीवन नहीं है। जीवन को जीने में शब्द की उपादेयता है। लेकिन शब्द मात्र की शिक्षा जीवन की शिक्षा नहीं हो सकती है। तब यह होता है कि शब्द तो बहुत हो जाते हैं। शिक्षित व्यक्ति के पास शब्दों के अतिरिक्त कोई सम्पत्ति नहीं होती। वह उतना ही मूढ़ होता है जितना अशिक्षित व्यक्ति। एक फर्क होता है, सिर्फ उसे एक भ्रान्ति पैदा हो जाति है कि मैं मूढ़ नहीं हूं। जीवन के और सारे अंगों के सम्बन्ध में

वह उतना ही अज्ञानी होता है जितना कोई और जंगल का निवासी। जीवन की कला के सम्बन्ध में उसकी कोई समझ नहीं होती। जीवन को जीने के रास्तों का उसे कोई पता नहीं होता। जीवन से उसका कोई परिचय ही नहीं होता। पुस्तकालयों और किताबों से जीवन का क्या नाता है? क्लास रूम से जो परिचित है वह जीवन से परिचित है, ऐसा समझ लेने के भ्रम में पड जाने की कोई जरूरत नहीं। और विद्यालय में जिसने स्वर्ण पदक ले लिया है जीवन उसे मिट्टी के पदक की भी कीमत नही देगा इसे ख्याल रखना जरूरी है। शब्दों की शिक्षा मात्र, शब्दों का संग्रह मात्र, शब्दों की सम्पति मस्तिष्क में एक बोझ तो बन जाती है लेकिन मस्तिष्क को न तो मुक्त करती हैं, न जीवन्त बनाती है,न विचारपूर्ण बनाती है, न जीवन को देखने की मौलिकता देती है, न जीने की कला देती है, न जीने का उपकरण सिखाती है। इसको हम अब तक शिक्षा कहते रहे हैं। इस शिक्षा का फल यह आदमी है जो आज हमारे सामने खड़ा हो गया है- बीमार, विक्षिप्त, रुग्ण। क्या आपको पता है जितनी शिक्षा बढ़ती जाती है उतना आदमी विकृत होता चला जाता है? अशिक्षित आदमी के पास एक तरह का संतुलन और स्वास्थ्य था जो शिक्षित आदमी के पास नहीं है। जंगलों के वासियों के पास एक तरह का सौंदर्य था एक तरह का संगीत था, एक आनन्द था; जीवन में एक अर्थ और प्रयोजन था जो शिक्षित आदमी के पास नहीं है। यह बड़ी हैरानी की बात है। क्या हम आनन्द को खोने के मूल्य पर शिक्षित हो रहे हैं? हमारी, आनन्द को अनुभव करने की क्षमता और पात्रता कम हो रही है। क्या हम जीवन के साथ अपनी जड़ों का सम्बन्ध तोड़ रहे हैं? अगर हम शिक्षित आदमी को निष्पक्ष आंखों से देखेंगे हालांकि देखना कठिन है। क्योंकि हम भी शिक्षित आदमी हैं। बहुत कठिन है यह बात कि हम शिक्षित आदमी के रोग को देख सकें। जहां एक ही रोग होता है वहां पहचानना बहुत कठिन हो जाता है। हम सभी शिक्षित हैं, न केवल हम शिक्षित हैं बल्कि हम शिक्षक भी हैं। हम किसी शिक्षा को फैलाने और देने वाले लोग भी हैं। हमें यह देखना बहुत कठिन हो जाएगा। यह सोचना बहुत कठिन हो जाएगा कि जो हम फैला रहे हैं वह मनुष्य को स्वस्थ नहीं बना रहा है। लेकिन जिनके पास भी आंखें हैं और जिन्होंने शिक्षा में शिक्षित होकर अपनी पूरी बुद्धिमता नहीं खो दी है वे लोग कुछ बातें देखने में असमर्थ हो सकते हैं। अमरीका सर्वाधिक शिक्षित मुल्क है। लेकिन सर्वाधिक पागलों की संख्या भी अमरीका में है। उन दोनों के बीच कोई सम्बन्ध है या केवल संयोग है। जो मुल्क जितने

शिक्षित होते जा रहे हैं उन मुल्कों का मानसिक तनाव भी उतना ही बढ़ता चला जा रहा है। जो मुल्क जितने शिक्षित हो रहे हैं उतने ही आत्मघात की संख्या वहां बढ़ती चली जा रही है। अमरीका में ही प्रतिदिन १५ लाख से लेकर ३० लाख लोग मानसिक विकारों के लिए चिकित्सा की तलाश करते हैं। और ये सरकारी आंकड़े हैं और हम भलीभांति जानते हैं कि सरकारी आंकडे कभी भी ठीक नहीं होते। १५ लाख से ३० लाख लोग अगर रोज मानसिक चिकित्सा को खोज रहे हों तो हमें जानना चाहिए कि कोई व्यक्तिगत भूल नहीं हो रही है, कोई सामूहिक बीमारी मनुष्य के भीतर प्रविष्ट हो रही है। न्यूयार्क में तीस प्रतिशत लोग बिना दवा लिये रात में नहीं सोते हैं। और वहां के वैज्ञानिकों की खोज बीन का यह नतीजा है कि अगले पचास वर्षों में न्यूयार्क में एक भी आदमी बिना दवा लिये नहीं सो सकेगा।

यह विकसित होते मनुष्य के लक्षण हैं और न्यूयार्क से हमारा क्या वास्ता है। लेकिन बम्बई भी बहुत दिन पीछे नहीं रहेगी। हम भी विकास करने में, दौड़ करने में साथ खड़े होंगे। हिन्दुस्तान भी पीछे नहीं रहेगा। जो हिन्दुस्तान हर चीज में जगत्गुरू रहा है वह पागलपन में भी जगतगुरू होकर ही रहेगा। हम बच नहीं सकते। हम दौड़ रहे हैं। हमारे नेता पूरी कोशिश कर रहे हैं कि हम किसी से पीछे न रह जायं। पश्चिम पर जो एक काली छाया मानसिक तनावों और अशान्ति पैदा की हुई है वह कैसे पैदा हो गई है? जिन लोगों ने पिछले तीन सौ वर्षों में पश्चिम को शिक्षित करने की कोशिश की है उन भले लोगों का, भली इच्छाओं के साथ इसके पीछे हाथ है। शायद उन्हें पूरी तरह जीवन का पता नहीं था। शायद अकेली बुद्धि विकसित हो जायेगी तो मनुष्य दुखी हो जाएगा यह उनके ख्याल में नहीं था। जरूर बुद्धिमता विकसित होनी चाहिए, बुद्धि विकसित होनी चाहिए। लेकिन जीवन के सारे अंगों के अनुपात में, संतुलन में स्वास्थ्य के साथ, हृदय के साथ, प्राणों के साथ उसका विकास होना चाहिए। वह अकेली विकसित हो जाएगी तो खतरा होना निश्चित है। बुद्धि के पास कोई हृदय नहीं होता है। बुद्धि जिस जीवन को बनायेगी और जिस जगत को, वहां भी हृदय नहीं होगा। बुद्धि के पास गणित होता है, प्रेम नहीं। बुद्धि के पास हिसाब और आंकड़े होते हैं, भावना नहीं। बुद्धि संख्याओं में सोचती है और तर्क में सोचती है। जीवन तर्क संख्याओं और गणित के पार चला जाता है। जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है। कोई गणित जीवन को समझा नहीं पाता। कोई संख्या, कोई आंकड़ा जीवन को हल नहीं कर पाता। जीवन बहुत रहस्य मय है लेकिन बुद्धि रहस्य (Mystery) को मानती ही नहीं। बुद्धि

मानती है जो चीजें दो और दो चार जैसी सीधी और साफ है। बुद्धि की यह जो रहस्य शुन्य (Non-Mysterios) और हृदयहीन पहुंच है जीवन के प्रति, उसने ही जीवन को यांत्रिकता प्रदान कर दी है। मनुष्य रोज रोज मशीन की भांति होता चला जा रहा है। लेकिन जब कोई आदमी मशीन हो जाता है, हम कहते हैं बहुत दक्ष है, हम कहते हैं बहुत कुशल है। मशीन आदमियों से हमेशा ज्यादा कुशल होती है। और आदमी की कुशलता पर ही हमारा जोर रहा तो एक न एक आदमी मशीन के जैसा कुशल हो जाएगा, लेकिन अपनी आत्मा को खोकर। आदमी भूलचूक करता है, मशीन भूल चूक नहीं करती। हम ऐसे आदमी की कोशिश कर रहे हैं जिससे भूल चूक न हो सके। जो एकदम कुशल हो, जो एकदम गणित की लकीरों पर चलता हो। गणित की लकीरों पर चले, रेल जैसे पटरियों पर दौड़ती है उस भांति। लेकिन जीवन की सरिताएं पटरियों पर नहीं दौड़तीं, अनजान, अपरिचित मार्गों पर दौड़ती हैं। जीवन की सरिता की एक स्वतंत्रता है जो बुद्धि के बंधे हुए ढांचे में समाविष्ट नहीं होती। लेकिन आजतक हमने यह किया है। और मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अकेली बुद्धि की शिक्षा बुद्धिमता नहीं है। जीवन के और पहलू भी हैं और बुद्धि से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि आदमी बुद्धि से नहीं जीता है। आदमियों के जीने के स्रोत बुद्धि से कहीं अधिक गहरे हैं। न तो बुद्धि से हम प्रेम करते हैं न बुद्धि से हम क्रोध करते हैं, न बुद्धि से हम घृणा करते हैं, न बुद्धि से हम सौन्दर्य को परखते हैं, न बुद्धि से हम गीत और काव्य को पढ़ते हैं, और न बुद्धि से जीवन को कोई भी गहरी अनुभूति उपलब्ध होती है। अकेले बुद्धि की शिक्षा जीवन को सब तरह की अनुभूतियों से क्षीण और वंचित कर दें तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन हम बुद्धि की ही शिक्षा देते रहे हैं। इस शिक्षा ने एक अत्यन्त असंतुलित, मनुष्य को पैदा कर दिया है। यह जो असंतुलित मनुष्य है यह कुछ भी कर रहा है, इससे कुछ भी हो रहा है, यह कोई भी उपद्रव कर रहा है। यह उपद्रव बिल्कुल ही सुनिश्चित है क्योंकि जब आदमी भीतर से असंतुलित हो जाये तो उसकी बाहर की चर्या भी असंतुलित हो जाती है। उसके जीवन में फिर कोई गति, कोई सुनिश्चित लक्ष्य, कोई संगीत, कोई लयबद्धता नहीं रह जाती। यह तो हमारे दुर्भाग्यों में पहला दुर्भाग्य हुआ कि शिक्षा को हमने केवल बुद्धि की शिक्षा समझ रखी है। समग्र जीवन की नहीं, पूरे (Total) जीवन की नहीं। पूरे जीवन की शिक्षा और ही अर्थ लेगी। मेरी दृष्टि में बुद्धि पर अति भार मनुष्य के भीतर कुछ चीजों को विकसित होने से ही रोक देता है। पांच वर्ष के बच्चे को हम स्कूल

भेजते हैं। उसकी बुद्धि पर इतना भार पड़ता है कि उसके शरीर उसके हृदय, उसकी भावनाओं की जीवन में रस और आनन्द लेने की सब क्षमताएं क्षीण हो। जाती है। सारे जीवन का रस बुद्धि ले लेती है और बाकी सारा जीवन सूख जाता है। ये बच्चे बड़े होते हैं, हृदयहीन, भावनाशून्य. प्रेम से रिक्त। मशीनों की भांति उनका एक ही मूल्य होता है कि वे कितने बड़े पदों पर पहुंच जायें, कितनी तन्खाहे ले आये, कितनी कुशलता से काम करें।

आदमी क्या केवल इसलिए पैदा होता है कि वह ज्यादा तन्खाह कमाये और बड़ी कुर्सी पर बैठ जाये ? या आदमी किसी और आनन्द की सम्पदा को खोजने जीवन में आता है? निश्चित ही उसकी खोज किसी बड़ी सम्पति की है। लेकिन उस सम्पदा को खोजने के लिए कुछ और चीजें विकसित होनी चाहिए। मेरी दृष्टि में दस या बारह वर्ष तक या चौदह वर्ष तक बच्चे की बुद्धि पर कोई भार नहीं होना चाहिए। १४ वर्ष के बाद ही बच्चे की बुद्धि पर भार होना चाहिए। चौदह वर्ष तक उसकी शरीर और उसकी भावनाओं के विकास पर सारा श्रम होना चाहिए। चौदह वर्ष बच्चे के जीवन के बहुत संक्रमणकारी हैं। जैसे ही यौन परिपक्वता (sex-maturity) उपलब्ध होती है, जैसे ही बच्चा यौन दृष्टि से परिपक्व होता है उसके बाद ही उसकी बुद्धि का सम्यक् विकास करना आसान और उचित है। उसके पहले उसके जीवन के और बहुमूल्य हिस्से हैं वे विकसित होने चाहिए। उसका स्वास्थ्य विकसित होना चाहिए, उसकी भावनाएं विकसित होनी चाहिए, उसके प्रेम करने की क्षमता विकसित होनी चाहिए। क्योंकि बचपन में जिन बच्चों के प्रेम करने की क्षमता विकसित नहीं हुई है वे बूढ़े भी हो जायं तो उनके भीतर प्रेम का विकास नहीं हो सकेगा। बचपन सबसे सुखद और अद्भुत मौका है कि बच्चे के जीवन में प्रेम विकसित हो जाय लेकिन वह अमूल्य समय हम गणित सिखाने में, भूगोल सिखाने में और इतिहास की बेवकूफियां सिखाने में नष्ट करते हैं और समाप्त करते हैं। क्या प्रयोजन है ये सब सिखाने का ? बच्चा अगर नहीं जानेगा बहुत भूगोल तो कुछ हर्जा नहीं हुआ जाता है। और बच्चे ने अगर अकबर और नेपोलियन और सिकन्दर जैसे पागल लोगों के नाम नहीं सीखे तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। किन लोगों ने कितने लोगो की हत्याएं की हैं इसकी कोई योजना बच्चों ने नहीं सीखी तो कोई अन्तर नहीं पड़ता है। और किस सन् में कौन बादशाह पैदा हुआ और मरा इन नासमझियों के सीखने का कोई अर्थ नहीं, न कोई सार है। लेकिन इन सबके सिखाने में बच्चे के प्रेम के विकसित होने के जो क्षण थे वे नष्ट

हो जाते हैं। क्या आपको पता है कि बचपन के बाद आपका सारा प्रेम भूखा और थोथा और धोखे से भरा हो जाता है? जिनको आपने बचपन में चाहा है उस चाहे में और जिनका आप बड़े में चाहते हैं, बुनियादी फर्क है। बचपन की वह जो पवित्रता है प्रेम की, अगर एक बार खो गई, अगर वह निर्दोषता (Innocence) एक बार खो गई तो जीवन में उसे दोबारा पाना अत्यन्त दूभर, अत्यन्त असम्भव हो जाएगा। बचपन की सारी पात्रता प्रेम के विकास में लगनी चाहिए, बुद्धि के विकास में नहीं। क्योंकि प्रेम के आधार पर, बुनियाद पर जो जीवन का भवन खड़ा होता है वही केवल आनन्द को उपलब्ध हो सकता है। बुद्धि से आनन्द का कोई भी नाता और सम्बन्ध नहीं है। बुद्धि को हम बुनियाद में रख देते हैं फिर जो भवन खड़ा होता है वह मंदिर नहीं होता है, वह एक फैक्टरी बन जाता है।

आदमी की जिन्दगी फैक्टरी बनानी हो तो बुद्धि पर भवन खड़ा होना चाहिए और आदमी की जिन्दगी को एक मंदिर बनाना हो तो प्रेम पर बुनियाद रखी जानी चाहिए। बचपन के सारे क्षण हृदय के विकास में दिये जाने चाहिए, सारा श्रम हृदय के विकास के लिए होना चाहिए। और हृदय के विकास के लिए कुछ और अवसर खोजने पड़ते हैं। वे अवसर नहीं जो हम स्कूल और विद्यालय में खोजते हैं। हृदय के विकास के लिए जरूरी है कि बच्चा खुले आकाश के नीचे हो, बजाय बन्द मकानों में। क्योंकि बन्द मकान हृदय को भी बन्द और कुंठित करते हैं। खुले आकाश के नीचे दरख्तों के पास हो, चांद तारों की छाया में हो, नदी और समुद्र के किनारे हो, खुली मिट्टी और पृथ्वी के संसर्ग में हो। जितने विराट के निकट होगा बच्चा उतने ही प्रेम का उसके भीतर जन्म होगा, और सौदर्य का बोध और रस विकसित होगा। बन्द दीवालों में काले तख्तों के सामने बैठे हुए छोटे छोटे बच्चों पर जो अपराध हो रहा है, जो पाप हो रहा है उसकी गणना आज नहीं कल मनुष्य जाति कभी करेगी तो हम सब दोषी करार सिद्ध होंगे। बच्चे को होश आते ही हम बन्द कमरे और दीवालों में बन्द कर देते हैं शिक्षा के नाम पर। करागृह में बन्द कर देते हैं और क्या सिखाते हैं उन्हें हम? और कौन से जीवन का मूल्य सिखाते हैं? फिर बचपन के ये अद्‌भुत क्षण जबकि जीवन से सम्पर्क हो सकता था, व्यर्थ खो जाते हैं।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि मुझे बन्द किया जाता था स्कूलों में। बाहर वृक्षों पर चिड़ियें गीत गाती थी और मुझे काले तख्ते को ही देखते रहता पड़ता था। चिड़ियों के गीत बहुत अद्‌भुत थे लेकिन मुझे शिक्षक की ही बेसुरी आवाज और

भूगोल पढ़ने पड़ते थे। और अगर मेरे कान और अगर मेरे प्राण पक्षियों के निकट पहुंच जाते तो बहुत सजा झेलनी पड़ती थी। रवीन्द्रनाथ ने शान्तिनिकेतन में पहली दफा जब विद्यालय डाला, कौन उनको अपने बच्चे देता बिगाड़ने के लिए। रवीन्द्रनाथ खुद भी कोई उपाधि नहीं पा सके, किसी विद्यालय से। सौभाग्य था उनका, नहीं तो दुनिया एक महाकवि से वंचित रह जाती। भाग्यशाली थे वे। उनके मां बाप असफल हो गये और रवीन्द्रनाथ को स्कूल से उठा लिये। अगर मां बाप सफल हो जाते तो दुनिया को एक बहत बड़ा नुकसान सहना पड़ता। और इस दुनिया ने कितने कितने नुकसान सहे होगें मनुष्य के इतिहास में। इसका कोई आकलन नहीं हो सकता। उनका कोई पता नहीं हो सकता कि कितने रवीन्द्रनाथ खो गये होंगे स्कूलों में। रवीन्द्रनाथ ने जब पहला स्कूल खोला कौन देता अपने बच्चों को बिगाड़ने के लिए। मैं कोई स्कूल खोलूं तो आप अपने बच्चे को भेजेंगे ? नहीं भेजेंगे। बच्चे को बिगाड़ने के लिए कौन भेजता ? लेकिन फिर भी रवीन्द्रनाथ के मित्रों के कुछ ऐसे बच्चे थे जिनको ओर बिगाड़ना सम्भव नहीं था। उनको रवीन्द्रनाथ के स्कूल में भेज दिया गया। वह आखिरी सीमा पर थे। उनसे कोई आशा और नहीं थी। रामानन्द चटर्जी ने, माडर्न रिव्यू के सम्पादक ने भी अपने लड़के को भेजा हुआ था। उससे बाज आ गये थे। जिन लड़कों में भी थोड़ी प्रतिभा होती है मां बाप उनसे बहुत परेशान हो जाते हैं। प्रतिभा और मेधारिक्त जड़बुद्धि बच्चे मां बाप को बड़े प्रीतिकर लगते हैं। क्योंकि उनसे जहां कहो बैठ जाओ, वे वहीं बैठ जाते हैं और कहो उठ जाओ तो उठ जाते हैं। उनके पास न अपनी कोई आत्मा होती है, न अपने कोई प्राण होते हैं। रामानन्द ने अपने लड़के को भी भेजा था। तीन महीने बाद रामानन्द देखने गये कि हालत क्या है ? स्कूल कैसा चलता है ? कोई आशा तो न थी स्कूल चलने की लेकिन जो देखा उससे और बड़ी हैरानी हुई। एक बड़े वृक्ष के नीचे रवीन्द्रनाथ बैठे हैं। दस पन्द्रह बच्चे उनके आस पास बैठे हैं। पढ़ाई चलती है। पास जाकर रामानन्द ने देखा दस पन्द्रह नीचे बैठे हैं। दस पन्द्रह वृक्ष के ऊपर चढ़े हैं। यह कैसी कक्षा है ? रवीन्द्रनाथ से उन्होंने कहा, मुझे शक था पहले ही। यह क्या हो रहा है, यह कोई कक्षा है ? देखकर मुझे दुख होता है। लड़के वृक्ष पर चढ़े हुए हैं। रवीन्द्रनाथ ने कहा, "दुख मुझे भी होता है। फल पक गये हैं। जो लड़के नीचे बैठे हैं उनपर मैं हैरान हूं। दुख मुझे भी होता है, दुखी मै भी हूं। मैं बूढ़ा हो गया अन्यथा मैं भी वृक्ष के ऊपर होता। फल पक गये हैं। फलों की सुगन्ध हवाएं ले आयी हैं। वृक्ष पुकार रहा है और अगर बच्चे नहीं चढेंगे तो कौन

चढ़ेगा ? वृक्षों ने निमंत्रण दे दिया है। ये बच्चे अभी से बूढ़े हो गये हैं जो नीचे बैठे हैं। इन्हें निमंत्रण भी नहीं मिला है। इनकी नासापुटों में खबर नहीं हो रही है कि फल पक गये हैं। वृक्ष बुलाता है कि आओ। दुखी हो गये वे जो असमर्थ ऊपर चढ़ने में। जो बूढ़े हो गये लेकिन यह तो अभी बूढ़े नहीं हुए। मैं बैठा यही सोचता था। ये बच्चे अभी से बूढ़े हो गये हैं क्या ? क्या इन्हें वृक्ष की चुनौती नहीं मिली ? इन्हें कोई खबर नहीं मिली ?"

हम बच्चों को बचपन में ही बूढ़े कर देते हैं और फिर अगर जीवन से युवापन, ताजगी (Freshness) नष्ट हो जाती हो तो कौन जिम्मेवार है ? बहुत अनाचार हो रहा है, बहुत गलत हो रहा है। बचपन के क्षण इतने अद्भुत हैं कि जीवन में वे वापस नहीं लौटेंगे। हिसाब किताब की बातें बाद में भी हो सकती हैं। पूरा जीवन पड़ा है लेकिन जीवन के कुछ मूल्यवान तत्व बचपन में ही दिये जा सकते हैं जो फिर कभी नहीं दिये जा सकते। प्रकृति का सान्निध्य जिन बच्चों को नहीं मिलता उन बच्चों को परमात्मा का सान्निध्य भी नहीं मिल सकेगा यह जान लेना चाहिए। क्योंकि प्रकृति द्वार है परमात्मा का। आकाश के तले, सूरज के निकट, समुद्र की रेत पर, वृक्षों के पास जो वहां मौजूद है, जो उपस्थिति वहां है परमात्मा की, उसे जिसने बचपन में अनुभव नहीं कर लिया है वह बुढ़ापे तक मंदिरों में पूजा करेगा, पत्थर की मूर्तियों के सामने सिर झुकायेगा, गीता, कुरान और बाइबिल कंठस्थ कर लेगा लेकिन परमात्मा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। जो द्वार था उसने उसको ही खो दिया है। जो रास्ता था वह उससे ही भटक गया है।

सम्यक शिक्षा (Right Education)) के लिए जो पहली बात जरूरी है वह यह कि हम बच्चों को प्रकृति का सान्निध्य उपलब्ध करा सकें। उन्हें हम मनुष्य निर्मित मकानों के पास नहीं, जीवन की ऊर्जा से जो निर्मित हुआ है उसके निकट ला सकें, उसी से वे परमात्मा के निकट पहुंच सकेंगे, उसी से वे प्रार्थना के सूत्र समझ सकेंगे। पीछे आनी चाहिए गणित। प्रेम पहले, क्योंकि जिस आदमी ने प्रेम सीख लिया है फिर गणित उसे धोखा नहीं दे सकेगी।

संत अगस्टीन से किसी ने पूछा, हम क्या करें ? हम क्या करें कि हमसे बुरा न हो ? अगस्टीन ने कहा– यह मत पूछो, मैं तो एक ही बात जानता हूं। अगर तुम प्रेम जानते हो तो तुम जो भी करोगे वह बुरा न हो सकेगा। अगस्टीन ने कहा, यह मत पूछें कि हम क्या करें, यह सवाल नहीं है। अगर भीतर प्रेम नहीं है तो तुम जो भी करोगे वह बुरा होगा। और अगर भीतर प्रेम है

तो तुम जो भी करोगे वह बुरा नहीं हो सकता है। लेकिन प्रेम की हमने कौन सी शिक्षा दी है, हमने प्रेम के कौन से प्रमाणपत्र बांटें हैं, हमने प्रेम की कौन सी उपाधियां दी हैं, और अगर तीन हजार वर्षों में आदमी बिल्कुल प्रेमशून्य ही हो गया हो, हत्यारा हो गया हो, हिंसक हो गया हो तो कौन है जिम्मेवार? हमारी शिक्षा के अतिरिक्त और किसी पर यह दोष नहीं दिया जा सकता, लेकिन इससे शिक्षक बुरा न मानें क्योंकि शिक्षा को यह दोष देने का मतलब है। मैं शिक्षा को बहुत आदर दे रहा हूं। मैं यह कहा रहा हूं कि शिक्षा जीवन का केन्द्र है इसलिए केन्द्रीय दोष भी झेलने की तैयारी शिक्षक के पास होनी चाहिए क्योंकि केन्द्रीय सम्मान भी केवल उसी को मिल सकता है। कल अगर जीवन परिवर्तित होगा तो सम्मानित भी शिक्षा ही होगी और अगर आज जीवन दूषित और विषाक्त हो गया है तो उसके केन्द्रीय दोष को, जिम्मेवारी को (Responsibility) को लेने को शिक्षाशास्त्री को तत्पर होना चाहिए। यह शिक्षा के केन्द्रीय होने का, शिक्षा के केन्द्र में होने का प्रमाण है। यह सम्मान-पूर्ण है। यह बात जो मैं कहा रहा हूं इसलिये क्योंकि शिक्षा केन्द्रीय है। न तो राजनीतिज्ञ जिम्मेवार हैं और न धर्मगुरु, उतना जितना शिक्षक जिम्मेवार है। लेकिन आनेवाली दुनिया भी शिक्षक को ही सम्मान देगी अगर वह जीवन को बदलने का कोई आधार रख सकता है। अगर आप नहीं बदल सकेंगे तो बच्चे खुद कल बदलना शुरू कर देंगे।

मेरे एक मित्र हालैंड और बेल्जियम से होकर लौटे। उन्होंने मुझे कहा वहां हाईस्कूल के लड़के और लड़कियों ने आगे पढ़ने से इन्कार करना शुरू कर दिया है। उनके बड़े संगठन हैं और वे कहते हैं कि आगे पढ़ने से क्या होगा? मां बाप से भी वे यह पूछते हैं कि आप तो बहुत पढ़े लिखे हैं, आपके जीवन में क्या हो गया है? तो हमें व्यर्थ उसी मशीन से क्यों गुजारते हैं जिससे गुजर कर आपने कुछ भी नहीं पाया है? और मां बाप के पास उत्तर नहीं है इस बात का। अगर आपके बच्चे भी आपसे पूछेंगे कि शिक्षित होकर आपने क्या पा लिया? क्या उत्तर है आपके पास? तिजोरी बता देंगे अपनी? अपने बड़े मकान बता देंगे? दिल्ली में पाई गई अपनी कुर्सियां बतायेंगे? क्या बतायेंगे बच्चे को? है कुछ आपके पास, जो शिक्षित होकर आपने पा लिया है? क्या बल से आप कह सकते हैं कि मेरा आत्मबल बड़ा है? किस बल पर आप कह सकते हैं कि मेरा आनन्द विकसित हुआ है? किस बल पर आप कह सकते हैं कि जीवन के प्रति मेरा अनुग्रह भाव विकसित हुआ है? क्या आप

कह सकते हैं कि मैं धन्यभागी हुआ हूं ? नहीं कह सकते हैं तो बच्चे आज नहीं कल आपसे पूछेंगे और अगर उत्तर नहीं है आपके पास तो मैं आपको कहे देता हूं बच्चे आज नहीं कल, आपकी शिक्षा की फैक्टरियों में जाने से इन्कार करेंगे। उन्होंने बहुत शिक्षित मुल्कों में इन्कार करना शुरू कर दिया है। ठीक भी है उनका इन्कार। लेकिन इसके पहले कि वे इन्कार करें, क्या हम सारे जीवन के सोचने का ढंग बदल नहीं सकते ? सेक्स मैच्योरिटी तक जबतक बच्चा यौन की दृष्टि से परिपक्व नहीं हो जाता, लड़का या लड़की, तबतक उसके जीवन की केन्द्रीय शिक्षा प्रेम और हृदय की होनी चाहिए। क्योंकि सारा जीवन उससे निकलेगा फिर वह पत्नी बनेगी या पति बनेगा, वह बाप बनेगा या मां बनेगी, उसके जीवन के सारे रागात्मक संबंध उसके प्रेम और हृदय के सम्बन्ध होंगे, गणित के नहीं, भूगोल के नहीं, इतिहास के नहीं,। इतिहास पढ़ने से कोई मां ज्यादा बेहतर मां नहीं बन सकती और न भूगोल पढ़ने से कोई बाप ज्यादा बेहतर बाप बन सकता है। कुछ और चाहिए जो एक बेहतर मां को, बेहतर बाप को पैदा करे। कुछ और चाहिए जो एक पति को और पत्नी को पैदा करे। आज न तो दुनिया में मां है, न बाप, न पत्नी न पति। इनके नाम पर झूठे रिस्ते (pseudo-Relationship) हैं। इनके नाम पर झूठे संबंध हैं। जिसको आप पत्नी कहते हैं उसको कभी आपने प्रेम किया है ? यह तो हो भी सकता है कि जिसको आप पत्नी नहीं कहते हैं उसको आपने कभी प्रेम किया हो लेकिन जिसको आप पत्नी कहते हैं उसे कभी नहीं। जिसको पत्नी पति कहती है उसको कभी चाहा है ? कभी आदर दिया है ? उसे कभी प्रेम किया है ? प्राणों ने कभी उसके लिए प्रार्थना की है ? कभी उसके जीवन को समृद्ध और संगीतपूर्ण बनाने के लिए कोई कदम उठाये हैं ? बिल्कुल नहीं, बल्कि उसके जीवन में जितने कांटे बो सके पत्नी उतने कांटे बोती है, जितनी बाधाएं खड़ी कर सके उतनी बाधाएं खड़ी करती है और पति भी यही करते हैं, मां बाप भी यही करते हैं। कहते हैं कि हम अपने बच्चे को प्रेम करते हैं। हमने प्रेम जाना ही नहीं, हम बच्चे को प्रेम कैसे करें ? अगर हम बच्चे को प्रेम करते होंगे तो दुनिया में इतने युद्ध नहीं हो सकते थे। कौन मां बाप है जो अपने बच्चे को युद्ध में भेजते ? अगर हम अपने बच्चे को प्रेम करते होते तो दुनिया इतनी कुरूप नहीं हो सकती थी। अगर हम अपने बच्चों को प्रेम करते होते तो मैं तो यह कहता हूं कि आप बच्चे पैदा भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि इस कुरूप और गन्दी दुनिया में बच्चों को किस मुंह से लाते। मां बाप अपने बच्चे को पैदा करने को तैयार होंगे ? वे हाथ

जोड़ लेंगे कि इस दुनियां में हम बच्चे को कैसे लायें? किस मुंह से लायें? बहुत लाया। कल बच्चे बड़े होंगे तो हम बेशर्म मालूम होंगे उनके सामने की इस दुनिया में हमने तुमको पैदा किया। इस कुरूप, बदशक्ल, अनीति से भरी अन्धकार भरी दुनिया में हम तुम्हें कैसे भेजें? मां बाप बच्चे पैदा करने से इन्कार कर देते अगर उनके हृदय में प्रेम होता। नहीं लेकिन वे बच्चे पैदा किये चले जाते हैं। उन्हें बच्चे से कोई प्रयोजन नहीं है। वे बच्चे को बड़ा किये चले जाते हैं। वे बच्चे को तोड़कर बन्दूक का भोजन बनाये चले जाते हैं। नई नई तरकीबों और नये नये नाम पर बच्चों की हत्या करवाये चले जाते हैं। हिन्दुस्तान के नाम पर, पाकिस्तान के नाम पर, चीन के नाम पर, कम्युनिज्म के नाम पर, डेमोक्रेसी के नाम पर। किसी भी बड़े नारे के नाम पर मां बाप अपने बच्चों की हत्या करवाने को हमेशा तैयार हैं। नाम बहुत बड़े हैं, नारे बहुत बड़े हैं। बच्चे बहुत छोटे हैं। अगर दुनिया में प्रेम होता तो मां बाप के मन में बच्चों के प्रति प्रेम के कारण एक दूसरी दुनिया पैदा होती जिसमें युद्ध नहीं हो सकते थे। क्यों? क्योंकि हर बच्चा किसी मां का बच्चा है और हर बच्चा किसी बाप का बेटा है। कौन बच्चे को युद्ध में भेजने के लिए राजी होता। हम कह देते मिट जाय पाकिस्तान, मिटे हिन्दुस्तान लेकिन बच्चे युद्ध में नहीं जा सकते। न बचे चीन, न बचे रूस, न बचे अमरीका, रहे न रहे लेकिन कोई मां अपने बच्चे को युद्ध पर भेजने के लिए तैयार नहीं है। दुनियां में युद्ध भी खत्म होते, राजनीतिज्ञ भी, राष्ट्र भी। लेकिन कोई अपने बेटे को प्रेम नहीं करता। प्रेम हम जानते ही नहीं हैं। प्रेम से हमारा परिचय भी नहीं है। प्रेम से हमारी मुलाकात ही नहीं हो पाई। प्रेम से मुलाकात के क्षण तो हमने न मालूम क्या क्या फिजूल की बातें सीखने में नष्ट कर दिये हैं। मेरी दृष्टि में शिक्षा की बुनियाद होनी चाहिए प्रेम, बुद्धि नहीं। बुद्धि केवल उपकरण है। अगर भीतर प्रेम होगा तो बुद्धि एक उपकरण बन जाती है प्रेम को फैलाने और विकसित करने का, और भीतर अगर प्रेम नहीं होगा तो बुद्धि उपकरण बन जाती है घृणा को फैलाने में।

ट्रूमेन ने हिरोशिमा पर एटम बम गिराने की आज्ञा दी। दूसरे दिन सुबह मैंने सुना है पत्रकारों ने ट्रूमन को घेर लिया और पूछा, "रात आप शान्ति से सो सके?" ट्रूमेन ने कहा बहुत शान्ति से। जैसे ही मुझे खबर मिली कि हिरोशिमा, नागासाकी राख हो गये और जापान समर्पण कर देगा वैसे ही पहली दफा शान्ति से सो सका। उन पत्रकारों में से किसी ने भी यह नहीं पूछा कि एक लाख बीस हजार आदमी नष्ट हो गये और तुम शान्ति से सो सके? तुम

आदमी हो या कुछ और ? लेकिन उस आदमी का नाम है ट्रमेन असली आदमी। हमारी शिक्षा ऐसे ही ट्रमेन पैदा कर रही है। जिनके भीतर कोई मनुष्यता जिनके भीतर प्राणों की कोई ऊर्जा, कोई करुणा नहीं है। जिनके पास प्रेम का कोई झरना नहीं है, जिनके पास प्रेम का झरना नहीं है वे हिसाब लगाने वाले कमप्यूटर्स हो सकते हैं, मशीन हो सकते हैं हिसाब लगाने वाली। आदमी नहीं। आदमी की पहली पहचान उसके भीतर का प्रेम है, जितना बड़ा प्रेम उतना बड़ा आदमी। जितना बड़ा प्रेम उतनी उस आदमी की परमात्मा से सान्निधि इसलिए एक बात ही बुनियादी रूप से कहना चाहता हूं कि शिक्षा के प्राथमिक क्षण प्रेम के क्षण होने चाहिए। और प्रेम के क्षण पाने के लिए बन्द दीवारें नहीं, खुला आकाश, पक्षी और वृक्ष, तारे और चांद चाहिए। प्राथमिक शिक्षा गणित की नहीं काव्य की। प्राथमिक शिक्षा भूगोल की नहीं सौन्दर्य की। प्राथमिक शिक्षा विज्ञान की नहीं, कला की। प्राथमिक शिक्षा तनाव की नहीं, विश्राम की और शान्ति की। अगर हम १४ वर्ष तक की शिक्षा को इस भांति व्यवस्थित कर सके तो बाद में इन बच्चों को बिगाड़ना कठिन है। इनको फिर किसी भी स्कूल और किसी भी युनिवर्सिटी में भेजा जा सकता है। फिर इन्हें कुछ भी सिखाया जा सकता है। उसमें फिर कोई खतरा नहीं होगा। इनके प्रेमपूर्ण हाथ में अगर तलवार दी जाएगी तो उस तलवार से कोई नुकसान नहीं होगा। एटम दे दिया जाएगा तो कोई नुकसान नहीं होगा। बड़ी से बड़ी शक्ति प्रेम के हाथों में सृजनात्मक (creative) हो जाती है। विज्ञान में शक्ति खोजते हैं बड़ी से बड़ी। लेकिन शिक्षक प्रेमपूर्वक हृदय नहीं दे पाया। बड़ी शक्ति खतरनाक है उन हाथों में जिनके पास प्रेम न हो। नादिरशाह हिन्दुस्तान की तरफ आता था। एक ज्योतिषी को उसने पूछा कि मैं सुनता हूं कि ज्यादा सोचना, ज्यादा नींद लेना बहुत बुरा है और मुझे तो बहुत नींद आती है। क्या सच में बहुत बुरी बात है ज्यादा देर सोये रहना ? उस ज्योतिषी ने कहा. "नहीं, आप जैसे लोग अगर चौबीस घंटे सोये रहें तो बहुत अच्छा है। बुरे लोग अगर बिल्कुल सो जायं तो बहुत अच्छा है। भले लोगों का जागना अच्छा होता है। और बुरे लोगों का सोना। सुनते हैं नादिरशाह ने उस आदमी की गर्दन कटवा दी लेकिन उसने बात बड़ी सच्ची कही थी। सच्ची बात कहने वालों की गर्दन काटे जाने का पुराना रिवाज रहा है। उसने बात ठीक कही थी। बुरे आदमी का सोना अच्छा है, अच्छे आदमी का जागना। ऐसे ही मैं कहता हूं प्रेम पूर्ण व्यक्ति का शक्तिशाली होना अच्छा है। प्रेम शून्य व्यक्ति का नपुसंक होना अच्छा है, शक्तिहीन (Impotent)

होना अच्छा है, प्रेम पूर्ण व्यक्ति के हाथ में शक्ति हो तो जीवन विकसित होता है। प्रेम शून्य व्यक्ति के हाथ में शक्ति हो तो जीवन एक कब्रिस्तान बनेगा और कुछ भी नहीं बन सकता। इस दिशा में चिंतन करना जरूरी है। शिक्षकों से मैं यही प्रार्थना और निवेदन करने आया हूं कि वे सोचें, वे इस सम्बन्ध में सोचें कि हृदय का विकास कैसे हो और अगर जरूरी हो, मुझे तो लगता है कि अगर सौ वर्ष के लिए सारी दुनियां के सारे विद्यालय और सारे विद्या पीठ बन्दकर दिये जायें और आदमी के मन को बिल्कुल ही अशिक्षित छोड़ दिया जाय तो भी नुकसान न होगा, जितना नुकसान सौ वर्षों में जो शिक्षा चल रही है उसको देने से होने वाला है। आदमी हजारों वर्ष तक अशिक्षित था। उन अशिक्षित लोगों ने आनन्द जाना, है, गीत जाने, प्रेम जाना। उन्होंने भी एक दुनियां बनायी थी। उनके जीवन में भी खुशी थी और मुस्कराहटें थी। हमने ज्यादा, हमसे बहुत ज्यादा हमने सब खो दिया है। आदमी के निसर्ग को वापस लौटा लेना जरूरी है। मैं यह नहीं कहता हूं कि शिक्षा खतम कर दी जाय। मैं यह कह रहा हूं कि शिक्षा की बुनियाद को बदल दिया जाय। और अगर यही शिक्षा चलती हो, कोई विकल्प (Alternative) न हो, यही शिक्षा एकमात्र चुनाव हो तो मैं कहता हूं यह सारी शिक्षा बन्द हो जाय और आदमी वापस जंगल में लौट जाय। तो भी हम कुछ खोयेंगें नहीं। लेकिन मुझे लगता है विकल्प है। इस शिक्षा को परिपूर्ण किया जा सकता है और एक चीज इसमें जुड़ जाय इसके आधार, प्रेम के भाव के और हृदय के, करुणा दया के हो जायें। मनुष्य के हृदय को हम पहले विकसित कर लें पीछे उसकी बुद्धि को। हृदय नेतृत्व करे, बुद्धि अनुगामी हो तो यह शिक्षा भी सम्यक् हो सकती है।

मैं निराश नहीं हूं। निराश होता तो फिर आपसे यह बात नहीं कहता। शिक्षकों से यह बात इसी आशा से कहता हूं कि वे सोचेंगें। उनके हाथ में बड़ी शक्ति है। आज नहीं कल दुनियां उन्हें जिम्मेवार ठहरायेगी अगर गलत हो गया तो। उसके पहले चिन्तन कर लेना उचित है। जीवन का मंदिर बनाना है तो आधार प्रेम के रखने होंगे और बचपन के १४ वर्ष तक का समय प्रेम के विकास के लिए अद्‌भुत मौका है। उस वक्त अगर हम चूक जाते हैं तो हम हमेशा के लिए चूक जाते हैं। फिर कोई उपाय नहीं रह जाता कि हम उसमें बदलाहट ला सकें। जबकि बचपन में बदलाहट लाने के लिए कुछ भी करना जरूरी नहीं था। प्रेम के झरने बहने उत्सुक थे। हमने जानबूझकर उन्हें रोक दिया। बहने नहीं दिया। हम केवल मौका बन जायें उनके प्रेम के झरने को बहाने के

लिए तो, बिल्कुल नये तरह के मनुष्य को पैदा करने में हम समर्थ हो सकते हैं। और एक नये मनुष्य की अत्यन्त जरूरत है। न तो इतनी जरूरत इस बात की है हम और नये एटम बम और हाइड्रोजन बम बनायें। न इस बात की जरूरत है कि हम चांद तारे पर पहुंचने के लिए स्पुतनिक और यान बनायें। न इस बात की जरूरत है कि हम समुद्रों की गहराइयां नाप लें, न इस बात की जरूरत है कि हम बहुत बड़ी बड़ी फैक्टरियां, बहुत बड़े बड़े पुल, बहुत बड़े बड़े रास्ते बनायें। ये सब पड़े रह जायेंगे। आदमी अगर गलत हो गया तो ये सब व्यर्थ हो जायेंगे। इस वक्त तो एक ही जरूरत है और वह यह है कि हम ठीक आदमी कैसे बनायें। आदमी गलत है। ठीक आदमी कैसे निर्मित हो इस दिशा में हम सोचें।

# जीवन क्रांति की दिशा

( एक प्रवचन )

संकलन : श्री श्याम सोनी

जीवन ही परमात्मा है । जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं । जो जीवन को जीने की कला को जान लेते हैं, वे प्रभु के मन्दिर के निकट पहुंच जाते हैं । और जो जीवन से भागते हैं वे जीवन से तो वंचित होते ही हैं, परमात्मा से भी वंचित हो जाते हैं । परमात्मा अगर कहीं है तो जीवन के मंदिर में विराजमान है और जिन्हें भी उस मंदिर में प्रवेश करना है, वे जीवन के प्रति धन्यता का बोध, आनन्द और आग्रहका भाव लेकर ही प्रवेश कर सकते हैं । लेकिन आजतक ठीक इससे उल्टी बात समझायी गई है । आजतक समझाया गया है, जीवन से पलायन (Escape), जीवन से पीठ फेर लेना, जीवन से दूर हट जाना, जीवन से मुक्ति की कामना, आजतक यही सिखाया गया है और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसके कारण ही पृथ्वी एक नर्क और दुःख का स्थान बन गई है । जो पृथ्वी स्वर्ग बन सकती थी वह नर्क बन गई है ।

मैंने सुना है एक सन्ध्या स्वर्ग के द्वारपर किसी व्यक्ति ने जाकर दस्तक दी । पहरेदार ने पूछा–'तुम कहां से आते हों ?' उसने कहा, 'मंगल ग्रह से आ रहा हूं।' पहरेदार ने कहा, 'तुम नर्क जाओ । यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। स्वर्ग के दरवाजे तुम्हारे लिए नहीं हैं । अभी नर्क जाओ ।' वह आदमी गया भी न था कि उसके पीछे एक और आदमी ने भी द्वार खटखटाया । पहरेदार ने फिर पूछा–"तुम कौन हो ? कहा से आते हो ?" उसने कहा, "मैं एक मनुष्य हूं और पृथ्वी से आता हूं।" द्वारपाल ने दरवाजा खोल दिया और कहा तो तुम आ जाओ तुम नर्क से ही रहकर आ रहे हो

(you have been through hell alredy) अब तुम्हें और किसी नर्क जाने की जरूरत नहीं। मनुष्य ने पृथ्वी की जो दुर्गति कर दी है वह बड़ी हास्यजनक और देखने जैसी है। और बहुत भले लोगों ने इस दुर्गति में हाथ बंटाया है। वे सारे लोग जिन्होंने जीवन की निन्दा की है और जीवन को तिरस्कृत (condemn) किया है, जिन्होंने जीवन को असार और बुरा कहा है, जिन्होने जीवन के प्रति घृणा सिखायी है, उन सारे लोगों ने पृथ्वी को नर्क बनाने में हाथ बंटाया है। जीवन के प्रति दुर्भाव छोड़ना होगा। धार्मिक मनुष्य को मन में जीवन के प्रति एक धन्यता का एक कृतज्ञता (Gratitude) का भाव लेना होगा। जीवन उसे असार नहीं दिखाई पड़ेगा। और अगर कहीं जीवन असार मालूम होता है तो वह समझेगा कि मेरी कोई भूल होगी जिससे जीवन गलत दिखाई पड़ रहा है। जब भी जीवन गलत दिखाई पड़ता है तो धार्मिक आदमी अपने को गलत समझते हैं। लेकिन मनुष्य की पुरानी भूलों में से एक यह है कि अपनी भूल दूसरे पर थोप देने की उसकी पुरानी प्रवृत्ति है। अपनी गलती को, अपने दोष को, अपनी व्यर्थता (Meaninglessness) को हम जीवन पर थोपकर मुक्त हो जाते हैं। जीवन ही दुख है। हम क्या करें।

सच्चाई दूसरी है। हम जिस चित्त को लिये बैठे हैं वह दुख को सृजन करने-वाला चित्त है। हम जिस मन को लिये बैठे हैं, जिन प्रवृत्तियों को लिये बैठे हैं वे प्रवृत्तियां दुख को पैदा करने वाली और दुख को जन्म देने वाली वृत्तियां हैं। पृथ्वी वैसी ही हो जाती है जैसे हम हैं। हम मौलिक रूपसे केन्द्रिय हैं, पृथ्वी नहीं।

इस पृथ्वी को आप वैसा ही पायेंगे जैसे आप हैं। इस पृथ्वी को आप आनन्दपूर्ण पायेंगे, अगर आपके हृदय में आनन्द की वीणा बजनी शुरू हो गई हो। और इसी पृथ्वी को आप दुख से भरा हुआ पायेंगे अगर आपके हृदय का दिया बुझा है और अंधकारपूर्ण है। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। पृथ्वी जरूर वही है जो आप हैं। जीवन को हम किस दृष्टि से देखते हैं इस पर ही सब कुछ निर्भर करता है। धार्मिक व्यक्ति जीवन से भागने वाला व्यक्ति नहीं है। भागने वाले होंगे कमजोर, भागने वाले होंगे सुस्त और आलसी, भागने वाले होंगे डरपोक और कायर, जिनमें जीवन का सामना करने का साहस और हिम्मत नहीं है। धार्मिक व्यक्ति से ज्यादा साहसी तो कोई होता ही नहीं। उससे ज्यादा साहस (courage) तो किसी के भीतर होता ही नहीं। धार्मिक व्यक्ति भागता नहीं है, स्वयं को बदलता है और स्वयं की बदलाहट के साथ ही पाता है कि सारा जीवन बदल गया है। जिस दिन वह खुद को बदल लेता है उस दिन वह पाता है कि सारे जीवन की पूरी स्थिति बदल गई है। जीवन कुछ और हो गया है। हमारी आंखों पर निर्भर है, वह जिसे हम देखते

हैं। हमारे प्राणों पर निर्भर है वह जिसका हम अनुभव करते हैं। और इसीलिये मैं कहता हूं जीवन के प्रति आनंद का भाव, जीवन केप्र ति अहोभाव, जीवन के प्रति अनुग्रह का बोध, यह धार्मिक व्यक्ति की जीवन क्रान्ति का पहला सूत्र है।

दूसरा सूत्र है जीवन के प्रति आश्चर्य का बोध। तीन हजार वर्षों में अगर मनुष्य ने कोई चीज खो दी है तो आश्चर्य खो दिया है। आश्चर्य के साथ ही खो गया है धर्म। आश्चर्य के साथ ही खो गया है जीवन का रहस्य। आश्चर्य के साथ ही खो गया है वह सब जो रहस्यपूर्ण (mysterious) है। आश्चर्य हमने कैसे खो दिया है? छोटे बच्चे तो आज भी आश्चर्य को लेकर पैदा होते हैं लेकिन मां बाप उनके आश्चर्य की गर्दन घोट देते हैं। छोटे बच्चे तो आज भी वैसे ही पैदा होते हैं जैसे पहले होते थे। लेकिन उनके आश्चर्य को हम उनके बोध के जगने के पहले ही नष्ट कर देते हैं। हमारी सारी शिक्षा संस्थाएं हमारे सारे संस्कार देने वाली व्यवस्था, हमारी सुविधा हमारी संस्कृति एक चीज की बुनियादी शत्रु है और वह चीज है आश्चर्य का भाव। पहले तो धर्मों ने आश्चर्य के भाव को नष्ट कर दिया। कैसे किया? जीवन में जो जो अज्ञात (unknown) था, और अज्ञात ही नहीं, जो जो अज्ञेय (unknowable) था, धर्मों ने यह घोषणा कर दी है कि वह सब हम जानते हैं। धर्मों ने कह दिया कि सृष्टि कैसे बनी, हमें पता है। कितने दिन में बनी है, हमें पता है। किस तारीख किस सदी में और किस सन् में बनी है, हमें पता है। परमात्मा ने कैसे प्रकृति और सृष्टि बनायी है यह हमें पता है। धार्मिक लोगों ने बहुत असत्य बोला है और दुनियां में इससे बड़ा कोई असत्य हो सकता है कि हमें पता है कि जीवन कैसे जन्मा, कि हमें पता है कि परमात्मा क्या है। परमात्मा और जीवन है अज्ञात। अज्ञात ही नहीं अज्ञेय। लेकिन धर्मों ने यह घोषणा की कि हमें पता है। धर्म गुरुओं ने यह घोषणा की कि हमें मालूम है। उन्होंने इतने जोर से दावा किया कि हमें पता है और फिर उन्होंने यह भी कहा है कि अगर कोई कहेगा कि हमें पता नहीं है और यह कोई अगर सिद्ध करना चाहेगा कि तुम अज्ञानी हो तो हम अपनी दलील को तलवार से सिद्ध करके बता देंगे कि हम जो कहते हैं वह ठीक है। जिसके हाथ में तलवार है वह जो कहता है सब ठीक है। मनुष्य को पता नहीं है कुछ भी। मनुष्य का अज्ञान बहुत गहरा है लेकिन कुछ अहंकारी लोगों ने, कुछ ऐसे लोगों ने जो यह स्वीकार नहीं कर सकते थे कि हम नहीं जानते हैं, जानने का भ्रम पैदा किया। क्योंकि न जानने की विकृति बहुत बड़ी विनम्रता (Humility) है। जो वस्तुत

धार्मिक होता है उसी में यह विनम्रता होती है कि मैं नहीं जानता हूं। लेकिन पंडित में यह विनम्रता नहीं होती है कि मैं नहीं जानता हूं। उसकी घोषणा होती है कि मैं जानता हूं। न केवल यही बल्कि यह कि दूसरे जो जानते हैं वह गलत जानते हैं। ठीक तो केवल मैं ही जानता हूं। मेरी किताब ठीक। मेरा सम्प्रदाय ठीक। मेरा तीर्थंकर ठीक। मेरा पैगम्बर ठीक। मेरा अवतार ठीक। मैं जो जानता हूं वही ठीक है और बाकी सब गलत है। इस तरह की घोषणाओं की निरन्तर पुनुरुक्ति से और बच्चों के मन में बचपन से ही इन बातों को प्रविष्ट करा देने से वह जो जीवन में अज्ञात था, वह विलीन हो गया और छिप गया। हमें लगने लगा कि हम सब कुछ जानते हैं और जब मनुष्य को लगने लगता है कि मैं सबकुछ जानता हूं तो आश्चर्य की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। तब विस्मय का कोई कारण नहीं होता। तब रहस्य के प्रविष्ट होने का कोई द्वार नहीं रह जाता। आदमी अपने ज्ञान के कारागृह में ही बन्द हो जाता है और वह चारों तरफ जो अज्ञात मौजूद है उसके लिए कोई दरवाजा, कोई खिड़की नहीं रह जाती कि उससे वह प्रवेश करे। पहले धर्मों ने मनुष्य के आश्चर्य की हत्या की–धर्म शास्त्रों ने, धर्म गुरुओं ने। फिर उनके पीछे आया विज्ञान, और विज्ञान ने और भी मनुष्य को यह ख्याल दे दिया कि हम सब जानते हैं। विज्ञान ने भी फिक्शन खड़े किये। धर्म ने भी खड़े किये थे। कल्पना के लोक विज्ञान ने भी खड़े किये। क्रिश्चियन्स कहते हैं कि ईश्वर ने चार हजार चार सौ वर्ष पूर्व दुनिया की सृष्टि की। ६ दिन में सृष्टि की और सातवें दिन विश्राम किया, रविवार के दिन। फिर विज्ञान आया और विज्ञान ने पुरानी कल्पनाओं को तो कहा कि यह कल्पनाएं (Fiction) हैं, लेकिन नयी कल्पनाएं खड़ी कर दीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि परमात्मा ने सृष्टि की, यह तो पता नहीं। लेकिन अरबों वर्ष पहले धुएं की नीहारिकाएं थी। उन्हीं नीहारिकाओं से सूरज का जन्म हुआ। सूरज से पृथ्वी का जन्म हुआ। पृथ्वी पर जो बड़े बड़े गड्डे हैं, यह जो आपका हिन्द महासागर है, पैसफिक है, अटलांटिक है। गड्ढे पृथ्वी से चांद का टुकड़ा अलग निकल गया इसलिए ये गड्ढे पैदा हो गये। पृथ्वी से चांद पैदा हुआ है। ये सब बातें भी अत्यन्त झूठी और बेबुनियाद हैं। इन बातों के लिए भी न कोई कारण है और न कोई वैज्ञानिक आधार है इन बातों को कहने का। लेकिन आदमी अपने अज्ञान को स्वीकार ही नहीं करना चाहता। किसी न किसी भांति वह यह भ्रम पैदा करना चाहता है कि हम सब जानते हैं।

एडीशन का नाम आपने सुना होगा। एक हजार आविष्कार किये एडीशन ने। शायद दुनिया में किसी एक आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किए। विद्युत की बात को एडीशन जितना जानता था शायद कोई नहीं जानता था। एडीशन अमरीका के एक छोटे से गांव में गया। उस गांव के स्कूल के बच्चों ने एक प्रदर्शनी सजायी थी। उसमें कुछ विद्युत के खेल खिलौने बनाये थे जो बिजली से चलते थे। मोटर बनायी थी, जहाज बनायी थी। एडीशन भी देखने गया था। बच्चों को क्या पता था कि जो देखने आया है वह जगत् का विद्युत के सम्बन्ध में जानने वाला सबसे बड़ा विचारक है। एडीशन उन बच्चों के खिलौनों को देखकर खूब खुश होने लगा और उसने पूछा, बच्चों ये चलते कैसे हैं? बच्चों ने कहा इलेक्ट्रिसिटी से, विद्युत से। एडीशन ने पूछा क्या मैं पूछ सकता हूं, यह विद्युत क्या है? वे बच्चे ठगे रह गये। बच्चों के अध्यापक भी ठगे रह गये। प्रधान अध्यापक भी ठगे रह गये। उनको किसी को पता नहीं कि वह आदमी एडीशन है। फिर एडीशन ने कहा आप घबरायें नहीं मेरा नाम है एडीशन। आपने सुना होगा। वह बोले, सुना है। आप ही ने तो विद्युत की सब खोज बीन की हैं। एडीशन ने कहा, तुम निश्चित रहो। चिन्तित मत हो। मैं भी नहीं जानता हूं। मैं भी उत्तर नहीं दे सकता हूं कि ये विद्युत क्या है? मुझे भी कोई पता नहीं कि विद्युत क्या हैं। हम केवल विद्युत का उपयोग करना सीख गये हैं। विद्युत क्या है हमें पता नहीं। अणु क्या है, हमें पता नहीं। अणुबम जरूर हम बनाना सीख गये हैं। एक माली बगीचे में एक बीज बो देता है और पौधा बड़ा हो जाता है। पूछें माली से पौधा क्या है? पूछें माली से बीज पौधा कैसे बन जाता है? माली कहेगा मुझे पता नहीं। हालांकि बीज को मैं बो देता हूं और पौधा बन जाता है। मैं बीज से पौधा बनाना सीख गया हूं। लेकिन पौधा क्या है! बीज क्या है! मुझे पता नहीं।

विज्ञान भी इस बगीचे में काम करने वाले मालियों की तरह है। जो बीज से पौधा बनाना सीख गया है। लेकिन जीवन क्या है? विज्ञान के पास भी कोई उत्तर नहीं है। और मैं आपसे कहता हूं, इसका मतलब यह मत समझ लेना कि धर्मों के पास उत्तर है। धर्मों के पास भी उत्तर नहीं है। विज्ञान के पास भी उत्तर नहीं है। आजतक आदमी के लिए जीवन के जो चरम प्रश्न हैं उनका कोई भी उत्तर उपलब्ध नहीं है। पहले धार्मिक लोग धोखा देते रहे कि हमें उत्तर पता है। अब वैज्ञानिक धोखा दे रहे हैं कि हमें उत्तर पता है। और चाहे धार्मिक धोखा दें, चाहे वैज्ञानिक इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

आदमी को धोखा दिया जाता रहा है। आज इस सीधे से सत्य को हम स्वीकार करने का साहस नहीं कर सकते कि हमें ज्ञात नहीं है कि सत्य क्या है। सत्य अज्ञात है। जीवन और परमात्मा सब अज्ञात हैं। मैं प्रार्थना करना चाहता हूं अगर दुनियां में चाहते हैं आप कि धर्म वापस लौट आये तो रहस्य के बिना, विस्मय के बिना, आश्चर्य के बिना धर्म वापस नहीं लौट सकता है। पंडितों ने, दार्शनिकों ने चिंतको ने बड़े कल्पना के जाल रचे, शब्दों के जाल रचे, अनुमानों के जाल रचे और इतने तर्क दिये उन अनुमानों के लिये कि सामान्य मनुष्य को यह भ्रम पैदा हो गया कि शायद ये लोग जानते हैं। शायद इन्हें पता है। और इस जानने के भ्रम में, इस ख्याल में कि हम जान गये हैं, जीवन के प्रति हमारे जो कदम उठ सकते थे, रहस्य के, विस्मय के, आश्चर्य के वे उठने बन्द हो गये। बचपन से ही हम बच्चे के आश्चर्य की हत्या कर देते हैं। शायद आपको ख्याल भी न हो कि बच्चों के साथ किये जाने वाले बहुत बड़े बड़े अपराधों में एक बड़ा अपराध है। बच्चे पूछते हैं वृक्ष क्या है? दरख्त हरे क्यों हैं? आकाश में तारे क्यों हैं? तारों में रोशनी क्यों है? आदमी कहां से पैदा होता है? यह फूल इतना रंगीन क्यों है? यह तितली इतनी सुन्दर क्यों है? और हम सब इस भांति सिर उठाकर उत्तर देते हैं, कि जैसे हमें पता है। कि छोटे बच्चे समझ लेते हैं कि पिता जो कहते हैं ठीक कहते हैं। मां जो कहती है ठीक कहती है। गुरू जो कहते हैं ठीक कहते होंगे। छोटे बच्चों को धोखा दिया जा रहा है। उनके भोलेपन का, उनकी निर्दोषता (Innocence) का शोषण किया जा रहा है। ईमानदार मां बाप और ईमानदार शिक्षक कहेंगे कि हमें कुछ भी पता नहीं। हम भी तितलियों के मामले में, आकाश, और तारों के मामले में उतने ही बच्चे हैं जितने तुम हो। हमें कुछ भी पता नहीं। जीवन के सम्बन्ध में हम भी उतने ही अज्ञानी हैं जितने तुम हो। तो बच्चों के भीतर आश्चर्य का और विस्मय का विकास होगा। तो वे युवा होते होते अत्यन्त आश्चर्य से भर जायेंगे। उनके हृदय में आश्चर्य लहरें लेने लगेगा। वे विस्मय से भर जायेंगे। वे जीवन के प्रति जानते हैं, इस भाव से नहीं बल्कि नहीं जानते ह इस भाव से देखेंगे। लेकिन हम, एक भूल में पड़ जाते हैं, हम परिचय (Acquaintance) को ज्ञान (Knowledge) समझ लेते हैं। एक मां अपने बच्चे को जन्म देती है। निश्चित ही अपने पेट में बड़ा करती है लेकिन क्या वह जानती है, जो पेट में बड़ा हो रहा है वह क्या है? अगर मां इस भूल में पड़ जाय तो गलती करती है। यद्यपि उसके ही पेट में जो जन्म ले रहा है और

बड़ा हो रहा है उसके की खून और मांस मज्जा से जो पल रहा है वह भी उसके लिए अज्ञात और अपरिचित है। वह भी उसके लिए पता नहीं कौन है और क्या है। वह बच्चा पैदा होगा। मां सोचती होगी कि मैं जानती हूं अपने बच्चे को। झूठी है यह बात। कोई मां अपने बेटे को नहीं जानती है। कोई बाप अपने बेटे को नहीं जानता। लेकिन परिचय हो जाता है तो हम सोचते हैं कि हम जानते हैं। फिर हम नाम रख लेते हैं। बच्चे का नाम राम और कृष्ण या और कुछ। और सोचते हैं कि पहचान गये। असलियत यह है कि उसका कोई नाम नहीं है जो पैदा हुआ है। नाम झूठे हैं जो हम दे रहे हैं। हम ही इन नामों को रखते हैं। और हम ही इन नामों को पुकारेंगे और फिर हम कहेंगे कि हम भलीभांति जानते हैं कि यह राम है। यह रामनाम झूठा है। वह जो पीछे है वह अनाम ( (Nameless)) है। उसका हमें कोई पता नहीं है कि उसका क्या नाम है। जो घर में जन्म लेता है हम उससे अपरिचित हैं लेकिन रोज रोज उसे देखते हैं, रोज रोज उसे पहचानते हैं तो लगता है कि उसे जानते हैं। पति सोचता है कि हम पत्नी को जानते हैं, पत्नी सोचती है कि हम पति को जानते हैं। कोई किसी को नहीं जानता। पति और पत्नी तो बहुत दूर, हम अपने को भी नहीं जानते हैं। स्वयं का भी हमें कोई पता नहीं है। और जिन्हें स्वयं का भी पता नहीं है उन्हें और किस चीज का पता हो सकता है? जिन्हें अपना ही ज्ञान नहीं उन्हें और किस चीज का ज्ञान हो सकता है? हमारा अज्ञान बहुत गहरा है। लेकिन इस अज्ञान को हम ज्ञान के शब्द सीखकर छिपा लेते हैं और ज्ञानी बन जाते हैं। अज्ञान से भी खतरनाक वह ज्ञान है जो अज्ञान को छिपाने में सहयोगी बनता है। वे ज्ञान के वस्त्र जो अज्ञान को छिपा लेते हैं बहुत खतरनाक हैं। आदमी ने जीवन में जो भी सत्य है और सुन्दर है और श्रेष्ठ है उसे ज्ञान के वस्त्रों में ही खो दिया है। पता है आपको सौन्दर्य क्या है? पता है आपको सत्य क्या है? पता है आपको शुभ क्या है? कुछ भी हमें पता नहीं है। लेकिन चूंकि किसी को भी कुछ पता नहीं है और हम सभी यह घोषणाएं करते हैं कि हमें पता है। इसलिए मनुष्य जाति में से कोई भी उंगली उठाकर नहीं कह सकता कि झूठ बोल रहे हो। हम सब एक ही नाव पर सवार हैं। हम सब एक ही बीमारी से पीड़ित हैं, इसलिए हमें पता भी नहीं चलता कि कोई बड़ा झूठ जीवन में बोला जा रहा है। बहुत बड़े बड़े झूठ प्रचलित हुए हैं लेकिन अगर झूठ सभी को पकड़ ले तो उनका पता चलना बन्द हो जाता है।

एक बार ऐसा हो गया। एक गांव में एक जादूगार आया और उसने आकर गांव के कुंए में कोई मंत्र पढ़ा और कोई चीज उसमें डाल दी और कहा कि इस कुंए का पानी जो भी पियेगा पागल हो जाएगा। सांझ होते होते गांव के सभी लोगों ने उस कुंए का पानी पिया, क्योंकि प्यास नहीं सही जा सकती। पागलपन सहा जा सकता है। मजबूरी थी, जानते हुए भी कि पागल हो जायेंगे पानी पीना पड़ा। सारा गांव सांझ होते होते पागल हो गया। सिर्फ राजा, उसकी रानी और उसका वजीर बच गये। उनके मकान में दूसरा कुंआ था। वे गांव के कुंए का पानी नहीं पीते थे। उनका अपना कुंआ था। वे तीनों बच गये। वे बड़े प्रसन्न थे कि हम अच्छे बच गये हैं। पूरा गांव तो पागल हो गया है। लेकिन सांझ उन्हें पता चला कि भूल हो गई हमारे बचने में। पूरे गांव के लोग जलूस बनाकर घर के सामने आ गये और नारा लगाने लगे और उन्होंने कहा ऐसा मालूम होता है कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। राजा को बदलेंगे हम। यह राजा नहीं चल सकता। यह लोकतंत्र का जमाना है। पागल राजा नहीं चल सकते। उतरो नीचे महल से तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। हम तुम्हारा इलाज करेंगे। राजा बहुत घबराया। उसके सिपाही भी पागल हो गये थे। उसके नौकर चाकर भी पागल हो गये थे। उसके सैनिक भी पागल हो गये थे। उसने अपने वजीर से कहा, "क्या करें हम। बात उल्टी है। पागल ये लोग हो गये हैं। लेकिन भीड़ जब पागल हो जाती है तो बताना बहुत कठिन है कि वह पागल है। क्या करें हम?" वजीर ने कहा "एक ही रास्ता है। पीछे के दरवाजे से हम भागें जितनी तेजी से भाग सकें। और उसी कुंए का पानी पी लें जिस कुंए का इन लोगों ने पिया है तभी हम बच सकते हैं।" वह राजा और वजीर भागे। उन्होंने जाकर उस कुंए का पानी पी लिया। उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया और गांव के लोगों ने बड़ी खुशी मनायी और भगवान को धन्यवाद दिया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया है।

जब सारा समूह एक ही पागलपन से पीड़ित होता है तो पहचानना कठिन हो जाता है कि पागलपन क्या है? और अगर कोई आदमी पहचान ले तो वही आदमी उल्टा पागल मालूम होता है। भीड़ पागल नहीं मालूम पड़ती है। जीसस क्राइस्ट पागल मालूम पड़ते हैं। इसीलिए भीड़ ने उन्हें सूली पर लटका दिया। सुकरात पागल मालूम पड़ता है इसीलिए भीड़ ने उसे जहर पिला दिया। मन्सूर पागल मालूम पड़ता है इसीलिए भीड़ ने उसकी चमड़ी खींच ली, गांधी

पागल मालूम पड़ते हैं, तो भीड़ ने गोली मार दी। आज तक जमीन पर जितने लोगों ने भीड़ के कुंए का पानी नहीं पिया उनके साथ यही व्यवहार हुआ है और भीड़ निश्चिन्त है। भीड़ को शक पैदा नहीं होता क्योंकि चारों तरफ सभी-लोग गवाह होते हैं कि ठीक हैं हम। मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि मनुष्य जाति की सबसे बड़ी विक्षिप्तताओं में, सबसे बड़े पागलपनो में ज्ञान का पागलपन है। और ज्ञान के कुंए से हम सबों ने पानी पी लिया है। चाहे उस ज्ञान के कुंए का नाम हिन्दुओं का कुंआ हो, चाहे उस ज्ञान के कूंए का नाम मुसलमानों का कुंए हो, चाहे उस ज्ञान के कूंए का नाम जैनियों का कूंआ हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कुएं का नाम कुछ भी हो, लेकिन ज्ञान के कुएं से जिसने भी पानी पी लिया है उनके जीवन से आश्चर्य का भाव नष्ट हो जाता है। और जहां आश्चर्य गया वहां धर्म गया, वहां दर्शन गया। और जहां विस्मय गया जहां जीवन से विस्मय से देखने वाली आंखें चली गई, वहां सब कुछ चला गया। वहां फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता। फिर परमात्मा की कोई खोज नहीं हो सकती, क्योंकि परमात्मा अगर कुछ है तो वही है जिसे हम रहस्य कहते हैं, जिन्हें मापने और जांचने का कोई उपाय नहीं, जिन्हें तौलने के लिए कोई तराजू नहीं। जिसको प्रकट करने के लिए कोई शब्द नहीं है। जिसको बताने के लिए कोई शास्त्र नहीं है, कोई सिद्धान्त नहीं है। लेकिन शास्त्रों और सिद्धान्तों और ज्ञान की दीवालें बीच में खड़ी हो जाती हैं और जीवन उस तरफ रह जाता है।

बहुत दिन हुए । चीन के एक गांव में बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। हजारों लोग वहां इकट्ठे थे। कहीं इकट्ठे होने का मौका भर मिल जाय फिर आदमी इकट्ठे होने से चूकता नहीं है। जरूर इकट्ठा हो जाता है। असल में अकेले होने से आदमी इतना घबराया होता है कि जहां भी भीड़ को मौका मिलता है वहां जरूर पहुंच जाता है। बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। बड़ा मेला था। एक कूंआ था उस मेले के किनारे। उस कूंए पर कोई पाट नहीं था कोई घेरा नहीं था। एक आदमी उस कूंए में गिर गया। वह बहुत जोर जोर से कुंए के भीतर से चिल्लाने लगा कि मुझे बचाओं में मरा जा रहा हूं। लेकिन उस मेले में इतना शोर था कि कौन सुनता ? एक बौद्ध भिक्षुक कूंए के पास से निकला। उसे सुनाई पड़ा कि कोई कूए के भीतर चिल्लाता है कि मैं मरा जा रहा हुं मुझे बचाओ। उस भिक्षु ने झांककर नीचे देखा और कहा, "मेरे मित्र जीवन में आनन्द भी क्या है जो बचने की तुम कामना करते

हो। जीवन एक दुख है। जीवन है पाप। पाप से बचने का प्रयोजन? और यह जो तृष्णा है बचने की, यह जो लोभ है जीवन का यही अगले जन्म का कर्म बंधन हो जाएगा। शांत रहो।" उस आदमी ने कहा कि मुझे उपदेश नहीं चाहिए। कृपा करके मुझे बाहर निकालिये। लेकिन उस भिक्षु ने कहा, "मैं किसी के कर्मो के बीच में बाधा नहीं बन सकता। तुमने कुछ किया होगा। किसी को कुंए में गिराया होगा और अब तुम गिरे हो। तुम पिछले जन्म का कर्म फल भोगते हो, मित्र। सुनी नहीं तुमने यह सिद्धान्त की बात और अब मरते क्षणों में मोह छोड़ो जीवन का। शांति से मरो तो निर्वाण हो जाएगा नहीं तो फिर लौटकर आना पड़ेगा।" भिक्षु आगे बढ़ गया उसके पीछे ही कन्फ्युसियस का एक सन्यासी आया। उसने भी कुंए में चिल्लाते आदमी की आवाज सुनी। वह किनारे गया और झांका। उसने कहा कि समझ गया कन्फ्यूसियस ने लिखा है अपनी किताब में कि वही राज्य श्रेष्ठ है जो अपने कूंओ पर पाट बांध देता है। जो कूंओं पर पाट नहीं बांधता है वह राजा अन्यायी है। तुम घबराओ मत हम आन्दोलन उठायेंगे। हम जाकर जनता को समझायेंगे। अभी हम मेले में जाते हैं। अभी हम राजा के महल पर पहुंचते हैं। हर कूंए पर पाट होना ही चाहिए ताकि कोई गिर न सके। उस आदमी ने कहा "वह पीछे करना। मैं मरा जा रहा हूं। मुझे बाहर निकालो।" लेकिन उसने कहा सवाल तुम्हारा नहीं है, सवाल जनता जनार्दन का है। सक आदमी बचता है मरता है यह सवाल नहीं है। कूंए पर पाट होना चाहिए। और तुम घबराओ मत। निश्चिन्त रहो,। तुम्हारे बच्चे ऐसी दुनियां में रहेंगे जहां कूंएं पर पाट हो। उसने कहा बच्चों का सवाल नहीं है। मैं मरा जाता हूं। उस आदमी ने कहा, "बच्चों के लिए एक बड़ी कुर्बानी मां बाप को करनी पड़ती है तुम तो मर जाओगे लेकिन बच्चे ऐसी दुनियां में रहेंगे जहां कोई कूंएं में नहीं गिर सकेगा। तुम बेफिक्र रहो।" वह कन्फ्यूसियन भी आगे चला गया। उसने जाकर भीड़ में शोर गुल मचाया। वह एक मंच पर सवार हो गया। उसने समझाना शुरू कर दिया कि ऐसे कूंए नहीं चाहिए जिनपर पाट न हों। उन दोनों के चले जाने के बाद एक ईसाई साधु, एक ईसाई मिशनरी वहां से निकला। कूंएं में किसी को चिल्लाता देखकर वह तत्क्षण कुएं में कूद पड़ा और उस आदमी को बाहर निकाल लिया। उस आदमी ने कहा बहुत बहुत धन्यवाद। तुम्हीं सच्चे धार्मिक आदमी हमें मालूम पड़ते हो। एक बौद्ध भिक्षु निकला। उसने कहा कि कर्मो का फल भोग रहे हो अपने। कन्फ्यूसियस का भिक्षु निकला। उसने कहा हम राज्य में परिवर्तन करने

के लिए आन्दोलन चलायेंगे। तुम्हीं सच्चे धार्मिक हो। उस ईसाई मिशनरी ने कहा –"नहीं मित्र माफ करो। मैंने तो तुम्हें इसलिए निकाला है कुंए से, क्योंकि जीसस क्राइस्ट ने कहा है, "जो सेवा करता है स्वर्ग उनको उपलब्ध होता है।" हम तो यही चाहते हैं कि रोज रोज लोग कूंए में गिरते रहें और हम उन्हें निकालते रहें। जितने ज्यादा लोग कूंए में गिरेंगे उतनी ही हमारी सेवा, उतना ही स्वर्ग राज्य (Kingdom of God) हमारा हो जायेगा। तुम रोज रोज गिरो और अपने पर के लोगों को भी समझाओ कि वे भी गिरें। सेवा बहुत जरूरी है। बिना सर्विस के कोई परमात्मा को पहुंचता ही नहीं है।

आदमी कूंए में मर रहा है, लेकिन उसे देखने वाला कोई भी नहीं है। क्योंकि शास्त्र बीच में आ जाते हैं। जीवन चारों तरफ है लेकिन उसे देखने वाला कोई भी नहीं है, क्योंकि शब्द बीच में आ जाते हैं। परमात्मा हर क्षण मौजूद है लेकिन उससे पहचान नहीं होगी क्योंकि ज्ञान बीच में आ जाता है। ज्ञान से बड़ी बाधा, जीवन और मनुष्य के बीच दूसरा कोई अवरोध, दूसरा कोई पहाड़ नहीं है। लेकिन ज्ञान को हम समझते हैं कि बड़ी ऊंची बात है। हम समझते हैं कि ज्ञान अर्जित कर लिया तो बहुत कुछ कमाई करली। लेकिन ज्ञानी नहीं, केवल वे ही विनम्र लोग, केवल वे ही विनम्र चित्त (Humble mind) जो जानते हैं कि हमें कुछ भी पता नहीं, केवल वे ही उस परम सत्य के निकट पहुंच पाते हैं और उसे जान पाते हैं। ज्ञान के भ्रम वाले लोग कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होते। अज्ञान में ही जीते और नष्ट हो जाते ह। यह बात बड़ी उल्टी मालूम होगी। मैं आपको यह कह रहा हूं कि आपको अगर अपने अज्ञान का परिपूर्ण बोध हो जाता है तो आपके जीवन में ज्ञान का जन्म हो सकता है। लेकिन वह ज्ञान बहुत दूसरा है। उस ज्ञान से जो शास्त्र से मिलता है–गीता, पुराण और बाइबिल से, उपनिषदों और वेदों से, महावीर और बुद्ध से जो ज्ञान मिलता है वह नहीं। शब्दों से जो ज्ञान मिलता है वह नहीं। शब्द हैं मुर्दा। उनका कोई मूल्य नहीं, उनमें कोई जीवन नहीं। खुद के प्राणों के साक्षात् से जो ज्ञान मिलता है वह बात और है। और उसे जानने के लिए अज्ञान का स्पष्ट बोध होना चाहिए। जिसे अज्ञान का बोध हो जाता है, जो जानता है कि मैं नहीं जानता उसके लिए रहस्य के द्वार खुल जाते हैं। लेकिन हमने बहुत संग्रह कर रखे हैं। हमने कंठस्थ कर रखे हैं ग्रन्थ। हमने शब्द सीख रखे हैं। हम उन तोतों की भांति हैं जिन्हें सब कुछ सिखा दिया गया है और याद करा दिया गया है। और हम इन्हीं शब्दों को दोहराते रहते हैं। कोई पूछे

आपसे, ईश्वर है? कौन सा उत्तर आता है आपके भीतर? मैं आपसे पूछता हूं ईश्वर है? कोई उत्तर आता है आपके भीतर? किसी के भीतर आता होगा, 'है,' अगर उसकी किताबों में ऐसा लिखा है। अगर उसके गुरुओं ने ऐसा बताया है। किसी के भीतर आता होगा, "नहीं है," अगर उसकी किताब में ऐसा लिखा है और उसके गुरुओं ने ऐसा बताया है। हिन्दुस्तान में पूछो ईश्वर है? तो बताते हैं, 'है' और रुस में पूछो तो वह बताते हैं "नहीं है।" हम सोचते हैं हिन्दुस्तान बड़ा आस्तिक है और रूस बड़ा नास्तिक है। नहीं साहब दोनों रटे हुए तोते बोल रहे हैं। हिन्दुस्तान के तोते को बताया जा रहा है कि ईश्वर है, तो वे कहते हैं कि ईश्वर है। रुस के तोते को बताया जा रहा है कि ईश्वर नहीं है तो वे कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। सीखी हुई बातें जो दोहरा रहा है वह आदमी के पद से नीचे गिर रहा है। सीखी बातें जो दोहरा रहा है वह अपने को तोता बना रहा है, अपने को मशीन बना रहा है। लेकिन अगर मैं पूछूं कि ईश्वर है? और आपके भीतर कोई उत्तर न उठे, न हां, न ना, मैं पूछूं ईश्वर है? और आपके भीतर सन्नाटा छा जाय। और सत्य यही होगा कि सन्नाटा छा जाय, क्योंकि आप नहीं जानते हैं कि है या नहीं। मैं पूछूं कि ईश्वर है? और आपके भीतर शुन्य हो जाय, आपके भीतर कोई उत्तर न आये, आप मौन रह जांय, आपके भीतर कोई शब्द घनीभूत न हो, आपके भीतर कोई प्रतिक्रिया ( Response ) न हो, आपके भीतर अप्रतिक्रिया (Non-Response) की स्थिति हो जाय। मैं पूछूं ईश्वर है? और आपके भीतर सब सन्नाटा हो जाय इस स्थिति में, इस स्थिति को मैं कह रहा हूं अज्ञान का बोध कि मुझे पता नहीं है, और इसी सन्नाटे में उसकी पगध्वनियां सुनाई पड़नी शुरू होती है जो परमात्मा है। इसी मौन ( Silence ) में, जीवन का संस्पर्श उपलब्ध होता है और तब फिर खोजने हिमालय नहीं जाना पड़ता है। और तब खोजने गंगा के तट की यात्राएं नहीं करनी होती हैं। और तब खोजने काशी और मक्का और मदीना नहीं जाना होता है। फिर येरुसलम की यात्रा नहीं करनी होती है। फिर मंदिर और मस्जिद में सिर नहीं टेकने पड़ते हैं। इतने शांत मन से, ऐसे मन से, जिसके पास उत्तर नहीं है, परमात्मा के द्वार खुल जाते हैं। अगर आपका मन उस अवस्था में आ जाएगा जहां से उत्तर नहीं आता है, जहां चुप्पी और मौन रह जाता है, तो आप एक अद्‌भुत द्वार को खोलने में समर्थ हो जाएंगे जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती। उस विनम्र मौन में ( Humble silence ) में कुछ घटित होता है। कोई

क्रान्ति हो जाती है और एक नये मनुष्य का जन्म हो जाता है। अब तक जिन लोगों ने भी जाना है उन्होंने ज्ञान से नहीं जाना है, मौन से जाना है। ज्ञान बहुत बकवासी है, ज्ञान बहुत मुखर है और परमात्मा के निकट तो वह पहुंचते हैं जो सब भांति मौन और शांत हो जाते हैं, जिनके भीतर कोई उत्तर नहीं। इसलिए मैं आपसे सब उत्तर छीन लेना चाहता हूं। सब उत्तर आप छोड़ दें। अपनी ज्ञान की झोली में जितने कंकड़ पत्थर हों वे फेंक दें! आमतौर से साधु समझाते हैं कि हमने जो समझाया है उसे अपनी गांठ में बांध लेना, छोड़–मत देना। मैं उल्टी बात समझाता हूं। मैंने जो समझाया है वह और मुझसे पहले जिन्होंने समझाया है वह सब कृपा करके आप छोड़ दें। और अपने मन को बिलकुल ही खाली और शून्य कर लें। अगर आज ही सारे ज्ञान को छोड़कर चुपचाप और मौन हो सकें तो हो सकता है कि कोई अनजान अतिथि आपके द्वार को खटखटाने लगे और कहे, "खोलो, मैं आ गया हूं।" क्योंकि जो आदमी अपने ही ज्ञान से भरा है, परमात्मा के ज्ञान के लायक उसके भीतर अवकाश (Space) ही नहीं होता है। जो अपने ज्ञान को छोड़ देता है उसमें परमात्मा के ज्ञान का अवतरण शुरु हो जाता है। आकाश से वर्षा होती है। वर्षा के दिनों में पहाड़ों पर भी पानी गिरता है, झीलों में भी पानी गिरता है, गड्ढों में भी पानी गिरता है। लेकिन पहाड़ पानी से खाली रह जाते हैं। क्योंकि वे खुद ही पहले से भरे हुए हैं लेकिन गड्ढे पानी से भर जाते हैं, क्योंकि वे पहले से खाली हैं। बादल कुछ भेद नहीं करते कि तुम पहाड़ हो कि तुम गड्ढे हो। दोनों पर पानी गिरा देते हैं लेकिन पानी गिरा हुआ व्यर्थ जाता है। पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं, क्योंकि अपने में भरे हैं। उनके पास पहले से कोई रिक्त स्थान नहीं है, कोई जगह नहीं है जहां पानी भर सके। गड्ढे में पानी भर जाता हैं। परमात्मा की वर्षा भी प्रतिक्षण हो रही है, प्रतिपल, प्रति स्वांस। लेकिन जो अपने भीतर भरे बैठे हैं वे खाली रह जाते हैं। और जो अपने भीतर खाली हैं वह उसके ज्ञान और प्रकाश से भर जाते हैं।

जीवन क्रान्ति का दूसरा सूत्र है स्वयं को ज्ञान से खाली कर लो। बड़ी मुश्किल यह बात है। आदमी और सब कुछ छोड़ सकता है, ज्ञान छोड़ने में उसके प्राण कंपते हैं। धन छोड़ सकते हैं। हजारों लोग धन छोड़कर त्यागी हो जाते हैं। पत्नी बच्चों को छोड़ सकते हैं। सैकड़ों लोग संन्यासी हो जाते हैं। लेकिन ज्ञान नहीं छोड़ पाता है आदमी। एक आदमी संन्यासी हो जाता है, फिर

भी मुसलमान बना रहता है! फिर भी हिन्दू बना रहता है! मैं तो हैरान हो गया हूं कि कैसे पागलों की दुनिया है? अगर गृहस्थ हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो तो समझ में आता है। लेकिन साधु भी जैन, हिन्दू मुसलमान और ईसाई कैसे हो सकता है! जिसने समाज ही छोड़ दिया उसने समाज का ज्ञान नहीं छोड़ा अबतक। समाज ने जो ज्ञान दिया है उसको पकड़े हुए बैठा है। एक साधु भी कहता है कि मैं जैन हूं, हिन्दू हूं, मुसलमान हूं। ये बीमारियां साधुओं के पास नहीं होनी चाहिए। लेकिन वही धन छोड़ देता है, घर छोड़ देता है लेकिन ज्ञान नहीं छोड़ पाता है। ज्ञान मनुष्य के अहंकार की गहरी से गहरी पकड़ है। न पद है अहंकार न धन है अहंकार। अहंकार की सूक्ष्मतम गहरी से गहरी पकड़ है ज्ञान। इसलिए जिनको यह ख्याल हो जाता है कि हम जानते हैं वे भटक जाते हैं। उनके जानने के रास्ते बन्द हो जाते हैं।

एक फकीर मर रहा था, वह मरण शैय्या पर पड़ा था। कुछ महाशय इकट्ठे थे। जिन्दा फकीर के साथ कभी कोई इकट्ठा नहीं होता, या तो मरते हुए फकीरों के पास लोग इकट्ठा होते हैं। या जो मर चुके हैं उनके पास इकट्ठे होते हैं। आदमी मुर्दो का बड़ा पुराना पूजक है। मरते हुए फकीर के पास लोग इकट्ठे थे और पूछने लगे कि तुमने ज्ञान कहां पाया? तुम्हें ज्ञान कैसे मिला? तुमने कैसे जाना जीवन को? तुम प्रभु को कैसे उपलब्ध हुए? उसने कहा, "यह बड़ा कठिन मामला है। मैं एक गांव से गुजर रहा था। मैंने बड़े बड़े गुरुओं की शरण ली, लेकिन कोई गुरु, गुरु साबित नहीं हुआ। असल में जो भी कहते हैं कि हम गुरु हैं वे दूकानदार होते हैं। वे कभी गुरू हो भी नहीं सकते। तो बहुत बहुत गुरु खोजे। कहीं कोई ज्ञान नहीं मिला। बहुत शास्त्र देखे, बहुत सिद्धान्त याद हो गये लेकिन जीवन में कोई फर्क न हुआ। कोई रोशनी न उतरी। लेकिन एक भ्रम पैदा हो गया कि मैं भी जानता हूं। फिर मैं एक गांव से गुजर रहा था, और जिस आदमी को यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं उस भ्रम के बाद दूसरी चीज शुरू होती है कि कोई फंस भर जाय उसके चंगुल में वह बिना उपदेश दिये नहीं रह सकता। कोई उसकी मुट्ठी भर में आजाय, फिर वह उपदेश जरूर देगा। तो उस फकीर ने कहा, मुझे ख्याल हो गया कि मैं जानता हूं। अब एक ही काम था कि जो मैंने जान लिया था उसे दूसरों को समझा दूं। एक गांव से निकल रहा था। गांव के लोग बड़े नास्तिक मालूम होते थे। कोई सभा में आया ही नहीं। बड़े अश्रद्धालु मालूम होते थे और दिन भर मैं नहीं बोल पाया था तो मेरी तो बड़ी मुसीबत हो गयी थी। तो मैं इस तलाश

में था कि कोई एकाध श्रद्धालु मिल जाय तो उसको उपदेश दे दूं। कोई तो नहीं मिला। एक छोटा सा बच्चा मिल गया। वह बच्चा एक हाथ में दिया लिए मंदिर में दिया रखने जाता था। मैंने उस बच्चे से कहा, बेटे ठहर, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दे दे। इस दिये में रोशनी कहां से आयी है? बता सकता है? इस दिये में ज्योति कहां से आयी? उस फकीर ने कहा– मैंने सोचा था बच्चा उत्तर नहीं दे सकेगा, फिर मुझे उपदेश देने का मौका मिल जायगा। लेकिन बच्चे ने मुझे बड़ी मुश्किल में ड़ाल दिया। वह बच्चा हंसने लगा और उसने फूंक मार कर दिया बुझा दिया और कहा कि स्वामी जी, ज्योति कहां चली गयी।? आप उपदेश दे सकते हैं? अगर आप बता देंगे कि ज्योति कहां चली गयी तो मैं भी बता दूंगा कि ज्योति कहां से आयी है। मेरे सारे पढ़े लिखे शास्त्र व्यर्थ हो गये। मेरी गुरुओं से पायी गयी शिक्षा दो कौड़ी की हो गयी। मैं निपट अज्ञानी की तरह खड़ा हो गया और मुझे ख्याल आया, मैं यह भी नहीं बता सकता कि ज्योति कहां चली गयी? मैं तो यह भी बताता हूं कि सृष्टि कहां से आयी और सृष्टि कहां विलीन हो जायगी? मैं तो यह भी बताता हूं कि परमात्मा पूर्व में बैठा है कि पश्चिम में। मैं तो यह भी बताता हूं कि परमात्मा कौन सी प्रार्थनाएं सुनकर खुश होता है और कौन सी बातें सुनकर नाराज? और मुझे यह भी पता नहीं कि ज्योति कहां चली गयी? मैंने उस बच्चे के चरणों में सिर रख दिया और कहा कि तूने मेरा ज्ञान छीन लिया। मैं कृतार्थ हो गया। तू मेरा पहला गुरू है।

क्या आप अपने ज्ञान को छोड़ देने की हिम्मत और साहस कर सकते हैं? अगर कर सकते हैं तो आपके भी जीवन में क्रान्ति हो सकती है। क्योंकि ज्ञान का भाव छूटते ही जीवन भर जायगा एक रहस्य से। सब अपरिचित हो जायगा और सब अज्ञात। जिस वृक्ष के पास से आप रोज रोज गुजरते हैं आज जब आप फिर उसके पास से निकलेंगे तो पायेंगे कि यह वही वृक्ष नहीं है जो कल देखा था, वे, वे ही पते नहीं हैं। जब घर लौटेगें और उन्हीं बच्चों को देखेंगे जिनको कल देखा था तो आप पायेंगे कि ये वे ही बच्चे नहीं हैं। गंगा में बहुत पानी बह गया। जीवन की गंगा बहुत बदल जाती है। सब नया हो जायगा। सब अद्‌भुत हो जायगा। जिस दिन सब आश्चर्य भर जायगा उसी दिन उसकी गंध मिलनी शुरू होती है, उसकी संगीत ध्वनि आती है जिसे हम प्रभु कहते हैं। परमात्मा के मंदिर के निकट केवल वही पहुंचते हैं जिनकी आत्माएं आश्चर्य से भर उठती हैं।

# प्रेम है द्वार प्रभु का

(एक प्रवचन)

संकलन : निकलंक

मनुष्य की आत्मा, मनुष्य के प्राण निरन्तर ही परमात्मा को पाने के लिए आतुर हैं। लेकिन किस परमात्मा को, कैसे परमात्मा को ? उसका कोई अनुभव, उसका कोई आकार, उसकी कोई दिशा मनुष्य को ज्ञात नहीं है। सिर्फ एक छोटा-सा अनुभव है जो मनुष्य को ज्ञात है और जो परमात्मा की झलक दे सकता है। वह अनुभव प्रेम का अनुभव है और जिसके जीवन में प्रेम की भी कोई झलक नहीं है उसके जीवन में परमात्मा के आने की कोई सम्भावना नहीं है। न तो प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंचा सकती हैं, न धर्म शास्त्र पहुंचा सकते हैं न मंदिर, मस्जिद पहुंचा सकते हैं, न कोई संगठन हिन्दु और मुसलमानों के, ईसाईयों के पारसियों के पहुंचा सकते हैं।

एक ही बात परमात्मा तक पहुंचा सकती है और वह यह है कि प्राणों में प्रेम की ज्योति का जन्म हो जाये। मंदिर और मस्जिद तो प्रेम की ज्योति को बुझाने का काम करते रहे हैं। जिन्हें हम धर्म गुरू कहते हैं, वे मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने के लिए जहर फैलाते रहे। जिन्हें हम धर्मशास्त्र कहते हैं, वे घृणा और हिंसा के आधार और माध्यम बन गए हैं और जो परमात्मा तक पहुंचा सकता था वह प्रेम अत्यंत उपेक्षित, होकर जीवन के रास्ते के किनारे अंधेरे में कहीं पड़ा रह गया। इसलिए पांच हजार वर्षों से आदमी प्रार्थनाएं कर रहा है, पांच हजार वर्षों से आदमी भजन-पूजन कर रहा है, पांच हजार वर्षों से मस्जिदों और मंदिरों की मूर्तियों के सामने सिर टेक रहा है, लेकिन परमात्मा की कोई झलक मनुष्यता को उपलब्ध नहीं हो सकी।

परमात्मा की कोई किरण मनुष्य के भीतर अवतरित नहीं हो सकी। कोरी प्रार्थनाएं हाथ में रह गयी हैं और आदमी रोज रोज नीचे गिरता गया है और रोज रोज अंधेरे में भटकता गया है। आनंद के केवल सपने हाथ में रह गये हैं। सच्चाइयां अत्यन्त दुखपूर्ण होती चली गयी हैं और आज तो आदमी करीब करीब ऐसी जगह खड़ा हो गया है जहां उसे यह ख्याल भी लाना असम्भव होता जा रहा है कि परमात्मा भी हो सकता है। क्या आपने कभी सोचा है कि यह घटना कैसे घट गयी है? क्या नास्तिक इसके लिए जिम्मेदार हैं? या कि लोगों की आकांक्षायें और अभिप्साएं परमात्मा की दिशा की तरफ जाना बन्द हो गई हैं? क्या वैज्ञानिक और भौतिकवादी लोगों ने परमात्मा के द्वार बन्द कर दिए हैं? नहीं, परमात्मा के द्वार इसलिए बन्द हो गए हैं कि परमात्मा का एक ही द्वार था प्रेम और उस प्रेम की तरफ हमारा कोई ध्यान ही नहीं रहा है। और भी अजीब और कठिन और आश्चर्य की बात यह हो गयी है कि तथाकथित धार्मिक लोगों ने मिल-जुलकर प्रेम की हत्या कर दी और मनुष्य को जीवन में इस भांति सुव्यवस्थित करने की कोशिश की गयी है कि उसमें प्रेम की किरण की सम्भावना ही न रह जाय।

प्रेम के अतिरिक्त मुझे कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता है जो प्रभु तक पहुंच सकता हो, और इतने लोग जो वंचित हो गए हैं, प्रभु तक पहुंचने से, वह इसी-लिए कि वे प्रेम तक पहुंचने से ही वंचित रह गए हैं। समाज की पूरी व्यवस्था अप्रेम की व्यवस्था है। परिवार का पूरा का पूरा केन्द्र अप्रेम केन्द्र हैं। बच्चे के गर्भाधान (Conception) से लेकर उसकी मृत्यु तक की सारी यात्रा अप्रेम की यात्रा है और हम इसी समाज को, इसी परिवार को इसी गृहस्थी को सम्मान दिये जाते हैं, अदब दिए जाते हैं, शोरगुल मचाए चले जाते हैं कि बड़ा पवित्र परिवार है, बड़ा पवित्र समाज है, बड़ा पवित्र जीवन है और यही परिवार और यही समाज और यही सभ्यता जिसके गुणगान करते हम थकते नहीं है। मनुष्य को प्रेम से रोकने का कारण बन रहा है। इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।

मनुष्यता के विकास में कहीं कोई बुनियादी भूल हो गयी है। यह सवाल नहीं है कि एकाध आदमी ईश्वर को पा ले, कोई कृष्ण, कोई राम, कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट ईश्वर को उपलब्ध हो जायें, यह कोई सवाल नहीं है। अरबों, खरबों लोगों में अगर एक आदमी में ज्योति उतर भी आती हो तो यह कोई विचार करने की बात नहीं है। इसमें तो कोई हिसाब रखने की जरूरत भी नहीं है। एक माली, एक बगीचा लगाता है। उसने दस करोड पौधे उस बगीचे में लगाये हैं और एक

पौधे में एक अच्छा सा फूल आ जाय तो माली की प्रशंसा करने कौन जायगा ? कौन कहेगा कि माली तू बहुत कुशल है। तूने जो बगीचा लगाया है, वह बहुत अद्भुत है। देख, दस करोड़ वृक्षों में एक फूल खिल गया है। हम कहेंगे यह माली की कुशलता का सबूत नहीं है—— फूल खिल जाना। माली की भूल चूक से खिल गया होगा क्योंकि बाकी सारे पेड़ खबर दे रहे हैं कि माली कितना कुशल है। यह माली के बावजूद खिल गया होगा। माली ने कोशिश की होगी कि न खिल पाये क्योंकि सारे पौधे तो खबर दे रहे हैं कि माली के फूल कैसे खिले हुए हैं ?

खरबों लोगों के बीच कोई एकाध आदमी के जीवन में ज्योति जल जाती है और हम उसी का शोरगुल मचाते रहते हैं हजारों सालों तक। पूजा करते रहते हैं, उसी के मंदिर बनाते रहते हैं, उसी का गुणगान करते रहते हैं। अब तक हम रामलीला कर रहे हैं, अब तक हम बुद्ध की जयंती मना रहे हैं। अब तक महावीर की पूजा कर रहे हैं, अब तक क्राइस्ट के सामने घुटने टेके बैठे हुए हैं। यह किस बात का सबूत है ? यह इस बात का सबूत है कि पांच हजार साल में पांच-छ आदमियों के अतिरिक्त आदमियत के जीवन में परमात्मा का कोई सम्पर्क नहीं हो सका। नहीं तो कभी का हम भूल गये होते राम को, कभी के भूल गये होते बुद्ध को, कभी का हम भूल गये होते महावीर को। महावीर को हुए ढाई हजार साल हो गए। ढाई हजार साल में कोई आदमी नहीं हुआ कि महावीर को हम भूल सकते। महावीर को याद रखना पड़ा है। वह एक फूल खिला था, वह अब तक हमें याद रखना पड़ता है, यह कोई गौरव की बात नहीं है कि हमें अब तक स्मृति हैं बुद्ध की, महावीर की, राम की, मुहम्मद की, क्राइस्ट की या जरथुष्ट्र की। यह इस बात का सबूत है कि और आदमी होते ही नहीं कि उनको हम भुला सकें। बस दो-चार इने गिने नाम अटके रह गए हैं मनुष्य जाति की स्मृति में और उन नामों के साथ हमने क्या किया है सिवाय उपद्रव के, हिंसा के। और उनकी पूजा करने वाले लोगों ने क्या किया है सिवाय आदमी के जीवन को नर्क बनाने के। मंदिरों और मस्जिदों के पुजारियों और पूजकों ने जमीन पर जितनी हत्याएं की हैं, और जितना खून बहाया है और जीवन का जितना अहित किया है उतना किसी ने भी नहीं किया है। जरूर कहीं कोई बुनियादी भूल हो गयी है नहीं तो इतने पौधे लगें और फूल न आएं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। कहीं भूल जरूर हो गयी है।

मेरी दृष्टि में प्रेम अब तक मनुष्य के जीवन का केन्द्र नहीं बनाया जा सका, इसीलिए भूल हो गयी है। और प्रेम केन्द्र बनेगा भी नहीं क्योंकि जिन चीजों के कारण प्रेम जीवन का केन्द्र नहीं बन रहा है, हम उन्हीं चीजों का शोरगुल मचा रहे हैं,

आदर कर रहे हैं, सम्मान कर रहे हैं उन्हीं चीजों को बढ़ावा दे रहे हैं। मनुष्य की, जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा ही गलत हो गयी है। इस पर पुनर्विचार करना जरूरी है, अन्यथा सिर्फ हम कामनाएं कर सकते हैं और कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्या आपको कभी यह बात ख्याल में आयी है कि आपका परिवार प्रेम का शत्रु है। क्या कभी आपको यह बात ख्याल में आयी है कि आपका समाज प्रेम का शत्रु है। क्या आपको यह बात कभी ख्याल में आयी है कि मनु से लेकर आज तक के सभी नीतिकार प्रेम के विरोधी हैं। जीवन का केन्द्र है परिवार और परिवार विवाह पर खड़ा किया गया है जबकि परिवार प्रेम पर खड़ा होना चाहिए था। भूल हो गयी है, आदमी के सारे पारिवारिक विकास की भूल हो गयी है। परिवार निर्मित होना चाहिए प्रेम के केन्द्र पर और परिवार निर्मित किया जाता है विवाह के केन्द्र पर। इससे ज्यादा झूठी और मिथ्या बात नहीं हो सकती है।

प्रेम और विवाह का क्या सम्बन्ध है ? प्रेम से तो विवाह निकल सकता है। लेकिन विवाह से प्रेम नहीं निकलता और न ही निकल सकता है। इस बात को थोड़ा समझ लें तो हम आगे बढ़ सकें। प्रेम परमात्मा की व्यवस्था है और विवाह आदमी की व्यवस्था है। विवाह सामाजिक संस्था है, प्रेम प्रकृति का दान है। प्रेम तो प्राणों के किसी कोने में अनजाने पैदा होता है। लेकिन विवाह ? विवाह, समाज, कानून, नियमित करता है, स्थिर करता है, बनाता है। विवाह आदमी की ईजाद है और प्रेम ? प्रेम परमात्मा का दान है। हमने सारे परिवार को विवाह के केन्द्र पर खड़ा कर दिया है, प्रेम के केन्द्र पर नहीं। हमने यह मान रखा है कि विवाह कर देने से दो व्यक्ति प्रेम की दुनिया में उतर जायेंगे। अद्भुत झूठी बात है यह, और पांच हजार वर्षों में भी हमको इसका ख्याल नहीं आ सका है। हम अद्भुत अंधे हैं। दो आदमियों के हाथ बांध देने से प्रेम के पैदा हो जाने की कोई जरूरत नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है बल्कि सच्चाई यह है कि जो लोग बंधा हुआ अनुभव करते हैं, वे आपस में प्रेम कभी भी नहीं कर सकते। प्रेम का जन्म होता है स्वतन्त्रता में। प्रेम का जन्म होता है स्वतन्त्रता की भूमि में जहां कोई बन्धन नहीं, जहां कोई जबरदस्ती नहीं है, जहां कोई कानून नहीं है। प्रेम तो व्यक्ति का अपना आत्मदान है, बन्धन नहीं, जबरदस्ती नहीं। उसके पीछे कोई विवशता कोई मजबूरी नहीं हैं। किंतु हम अविवाहित स्त्री या पुरुष के मन में, युवक और युवती के मन में उस प्रेम की पहली किरण का गला घोंटकर हत्या कर देते हैं, फिर हम कहते हैं कि विवाह से प्रेम पैदा होना चाहिए फिर जो प्रेम पैदा होता है, वह बिल्कुल पैदा किया, (cultivated) होता है, कोशिश से लाया गया होता

है । वह प्रेम वास्तविक नहीं होता, वह प्रेम सहजस्फूर्त (spontaneous) नहीं होता है । वह प्रेम प्राणों से सहज उठता नहीं है, फैलता नहीं है और जिसे हम विवाह से उत्पन्न प्रेम कहते हैं वह प्रेम केवल सहवास के कारण पैदा हुआ मोह होता है प्राणों की ललक और प्राणों का आकर्षण और प्राणों की विद्युत वहां अनुपस्थित होती है और इस तरह से परिवार बनता है– और इस विवाह से पैदा हुआ परिवार और परिवार की पवित्रता की कथाओं का कोई हिसाब नहीं है । और परिवार की प्रशंसाओं, स्तुतियों की कोई गणना नहीं है । और यहीं परिवार सबसे कुरूप संस्था साबित हुई है । पूरी मनुष्य जाति को विकृत (Perverted) करने में प्रेम से शून्य परिवार मनुष्य को विकृत करने में, अधार्मिक करने में, हिंसक बनाने में सबसे बड़ी संस्था साबित हुई है। प्रेम से शून्य परिवार से ज्यादा असुन्दर और कुरूप (ugly) कुछ भी नहीं है और वही अधर्म का अड्डा बना हुआ है। जब हम एक युवक और युवती को विवाह में बांधते हैं, बिना प्रेम के, बिना आन्तरिक परिचय के, 'बिना एक दूसरे के प्राणों के संगीत के तब हम केवल पंडित के मंत्रों में और वेदी की पूजा में और थोथे उपक्रम में उनको विवाह से बांध देते हैं और फिर आशा करते हैं उनको साथ छोड़ के, कि उनके जीवन में प्रेम पैदा हो जायगा । प्रेम तो पैदा नहीं होता है, सिर्फ उनके सम्बंध कामुक (sexual) होते हैं। क्योंकि प्रेम पैदा नहीं किया जा सकता है । प्रेम पैदा हो जाय तो व्यक्ति साथ जुडकर परिवार निर्माण कर सकता है। दो व्यक्तियों को परिवार के निर्माण के लिए जोड दिया जाये और फिर आशा की जाये कि प्रेम पैदा हो जायें, यह नहीं हो सकता है। और जब प्रेम पैदा नहीं होता है तो क्या परिणाम होते हैं आपको पता है? एक एक परिवार में कलह है। जिसको हम गृहस्थी कहते हैं, वह संघर्ष, कलह, द्वेष, ईर्ष्या और चौबीस घंटे उपद्रव का अड्डा बना हुआ है। लेकिन न मालूम हम कैसे अंधे हैं कि इसे देखते भी नहीं हैं। बाहर जब हम निकलते हैं तो मुस्कराते हुए निकलते हैं। सब घर के आंसू पोंछकर बाहर जाते हैं, पत्नी भी हंसती हुई मालूम पड़ती है, पति भी हंसता हुआ मालूम पड़ता है। ये चेहरे झूठे हैं। ये दूसरों को दिखाई पड़ने वाले चेहरे हैं। घर के भीतर के चेहरे बहुत आंसुओं से भरे हुए हैं। चौबीस घंटे कलह और संघर्षमें जीवन बीत रहा है। फिर इस कलह और संघर्ष के परिणाम भी होगें ही। प्रेम के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के जीवन में आत्मतृप्ति नहीं उपलब्ध होती । प्रेम जो है, वह व्यक्तित्व की तृप्ति का चरमविन्दु है, और जब प्रेम नहीं मिलता है तो व्यक्तित्व हमेशा अतृप्त, हमेशा अधूरा बेचैन, पड़पता

हुआ, मांग करता है कि मुझे पूर्ति चाहिए। हमेशा बेचैन. तड़पता हुआ रह जाता है। यह तड़पता हुआ व्यक्तित्व समाज में अनाचार पैदा करता है क्योंकि तड़पता हुआ व्यक्तित्व प्रेम को खोजने निकलता है। विवाह में प्रेम नहीं मिलता। वह विवाह के अतिरिक्त प्रेम को खोजने की कोशिश करता है। वेश्याएं पैदा होती हैं विवाह के कारण । विवाह है मूल (Root) विवाह है जड़, वेश्याओं के पैदा करने की। और अब तक तो स्त्री वेश्याएं थीं और अब तो सभ्य मुल्कों में पुरुष वेश्याएं (Male prostitute) उपलब्ध हैं। वेश्याएं पैदा होंगी क्योंकि परिवार में जो प्रेम उपलब्ध होना चाहिए था वह नहीं उपलब्ध हो रहा है। आदमी दूसरे घरों में झांक रहा है उस प्रेम के लिए। वेश्याएं होंगी, और अगर वेश्याएं रोक दी जाएंगी तो दूसरे परिवारों में पीछे के द्वारों से प्रेम के रास्ते निर्मित होंगे। इसीलिए तो सारे समाज ने यह तय कर लिया है कि कुछ वेश्याएं निश्चित कर दो ताकि परिवारों का आचरण सुरक्षित रहे । कुछ स्त्रियों को पीड़ा में डाल दो ताकि बाकी स्त्रियां पतिव्रता बनी रहें और सती–सावित्री बनी रहें। लेकिन जो समाज ऐसे अनैतिक उपाय खोजते हैं, जिस समाज में वेश्याओं जैसी अनैतिक संस्थाएं, ईजाद करनी पड़ती हैं जान लेना चाहिए कि वह पूरा समाज बुनियादी रूप से अनैतिक होगा अन्यथा यह अनैतिक ईजाद की आवश्यकता नहीं थी। वेश्या पैदा होती है, अनाचार पैदा होता है, व्यभिचार पैदा होता है, तलाक पैदा होते हैं। यदि तलाक न होता, न व्यभिचार होता, और न अनाचार होता तो घर एक चौबीस घंटे का मानसिक तनाव (Anxiety) बन जाता । सारी दुनिया में पागलों की संख्या बढ़ती गई है। ये पागल परिवार के भीतर पैदा होते हैं। सारी दुनिया में स्त्रियां हिस्टीरिया (Hysteria) और न्यूरोसिस (Neurosis) से पीडित हो रही हैं। विक्षिप्त, उन्माद से भरती चली जा रही हैं। बेहोश होती हैं, गिरती हैं, चिल्लाती हैं। पुरुष पागल होते चले जा रहे हैं। एक घंटे में जमीन पर एक हजार आत्महत्याएं हो जाती हैं और हम चिल्लाए जा रहे हैं, समाज हमारा बहुत महान् है ऋषि मुनियों ने निर्मित किया है और हम चिल्लाए जा रहे हैं कि बहुत सोच समझकर समाज के आधार रखे गए हैं। कैसे ऋषि मुनि और कैसे ये आधार? अभी एक घंटा मैं बोलूंगा तो इस बीच एक हजार आदमी कहीं छूरा मार लेंगे तो कहीं ट्रेन के नीचे लेट जाएंगे तो कोई जहर पी लेगा। उन एक हजार लोगों की जिन्दगी कैसी होगी, जो हर घंटे मरने को तैयार हो जाते हैं, और आप मत सोचना कि वे जो नहीं मरते हैं वे बहुत सुखमय हैं। कुल जमा कारण यह है कि वे मरने की

हिम्मत नहीं जुटा पाते, सुख का कोई भी सवाल नहीं, कायर हैं। मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं तो जिये चले जाते हैं, धक्के खाये चले जाते हैं। सोचते हैं आज गलत हैं, तो कल ठीक हो जायगा। परसों सब ठीक हो जायगा लेकिन मस्तिष्क उनके रुग्ण होते चले जाते हैं।

प्रेम के अतिरिक्त कोई आदमी कभी स्वस्थ नहीं हो सकता है। प्रेम जीवन में न हो तो मस्तिष्क रुग्ण होगा, चिंता से भरेगा, तनाव से भरेगा। आदमी शराब पियेगा, नशा करेगा, कहीं जाकर अपने को भूल जाना चाहेगा, । दुनिया में बढ़ती हुई शराब शराबियों के कारण नहीं है परिवार ने उस हालत में ला दिया है लोगों को कि बिना बेहोश हुए थोड़ी देर के लिए भी रास्ता मिलना मुश्किल हो गया है। तो लोग शराब पीते चले जाएंगे लोग बेहोश पड़े रहेंगे, लोग हत्या करेंगे, लोग पागल होते जाएंगे। अमरीका में प्रति दिन बीस लाख आदमी अपना मानसिक इलाज करवा रहे हैं और ये सरकारी आंकड़े हैं और आप तो भलीभांति जानते हैं, सरकारी आंकड़े कभी भी सही नहीं होते। बीस लाख सरकार कहती है तो कितने लोग इलाज करा रहे होंगे, यह कहना मुश्किल है और जो अमरीका की हालत है, वह सारी दुनिया की हालत है। आधुनिक युग के मनस्तत्वविद् यह कहते हैं कि करीब करीब चार आदमियों में दो आदमी एब्नार्मल हो गये हैं। चार आदमियों में तीन आदमी रुग्ण हो गये हैं, स्वस्थ नहीं हैं। जिस समाज में चार आदमियों में तीन आदमी मानसिक रूप से रुग्ण हो जाते हों उस समाज के आधारों को, उसकी बुनियादों को फिर से सोच लेना जरूरी है, नहीं तो कल चार आदमी भी रुग्ण हो जायेंगे और फिर सोचने वाले भी शेष नहीं रह जायेंगे। फिर बहुत मुश्किल हो जायगी। लेकिन होता ऐसा है कि जब एक ही बीमारी से सारे लोग ग्रसित हो जाते हैं तो उस बीमारी का पता नहीं चलता। हम सब एक से रुग्ण, बीमार, परेशान, हैं। तो हमें पता बिल्कुल नहीं चलता है। सभी ऐसे हैं इसीलिए स्वस्थ मालूम पड़ते हैं। जब सभी ऐसे हैं तो ठीक है। ऐसे दुनिया चलती है, यही जीवन है। जब ऐसी पीड़ा दिखायी देती है तो हम ऋषि मुनियों के वचन दोहराते हैं कि वह तो ऋषि मुनियों ने पहले ही कह दिया है कि जीवन दुख है।

यह जीवन दुख नहीं है, यह दुख हम बनाये हुए हैं। वह तो पहले ही ऋषि मुनियों ने कह दिया है कि जीवन तो असार है, इससे छुटकारा पाना चाहिए। जीवन असार नहीं है, यह असार हमने बनाया हुआ है और जीवन से छुटकारा पाने की सब बातें दो कौड़ी की हैं। क्योंकि जो आदमी जीवन से

छुटकारा पाने की कोशिश करता है वह प्रभु को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि जीवन प्रभु है, जीवन परमात्मा है, जीवन में परमात्मा ही तो प्रगट हो रहा है। उससे जो दूर भागेगा वह परमात्मा से ही दूर चला जायगा।

जब एक सी बीमारी पकड़ती है तो किसी को पता नहीं चलता है। पूरी आदमियत जड़ से रुग्ण है इसलिए पता नहीं चलता तो दूसरी तरकीबें खोजते हैं इलाज की। मूलकारण (Causality) जो है, बुनियादी कारण जो है उसको सोचते नहीं, ऊपरी इलाज सोचते हैं। ऊपरी इलाज भी क्या सोचते हैं? एक आदमी शराब पीने लगता है जीवन से घबरा कर। एक आदमी जाकर नृत्य देखने लगता है, वह वेश्या के घर बैठ जाता है जीवन से घबराकर। दूसरा आदमी सिनेमा में बैठ जाता है, तीसरा आदमी चुनाव लड़ने लगता है ताकि भूल जाय सबको। चौथा आदमी मंदिर में जाकर भजन कीर्तन करने लगता है। यह भजन कीर्तन करने वाला भी खुद के जीवन को भूलने की कोशिश कर रहा है। यह कोई परमात्मा को पाने का रास्ता नहीं है। परमात्मा तो जीवन में प्रवेश से उपलब्ध होता है, जीवन से भागने से नहीं। यह सब पलायन (Escape) हैं। एक आदमी मंदिर में भजन कीर्तन कर रहा है, हिल डुल रहा है, हम कहते हैं कि भक्त जी बहुत आनंदित हो रहे हैं। भक्त जो आनंदित नहीं हो रहे हैं, भक्त जी किसी दुख से भागे हुए हैं, वहां भुलाने की कोशिश कर रहे हैं। शराब का ही यह दूसरा रूप है। यह आध्यात्मिक नशा (spiritual intoxication) यह आध्यात्म के नाम से नयी शराबें हैं जो सारी दुनियां में चलती हैं। इन लोगों ने भाग भाग कर जिन्दगी को बदला नहीं आज तक। जिन्दगी वहीं की वहीं दुख से भरी हुई है और जब भी कोई दुखी हो जाता है वह भी इनके पीछे चले जाते हैं कि हमको भी गुरुमंत्र दे दें, हमारा भी कान फूंक दें कि हम भी इसी तरह सुखी हो जायें, जैसे आप हो गये हैं। लेकिन यह जिन्दगी क्यों दुख पैदा कर रही है इसको देखने के लिए, इसके विज्ञान को खोजने के लिए कोई भी जाता नहीं है। मेरी दृष्टि में जहां जीवन की शुरुआत होती वहीं है कुछ गड़बड़ हो गयी है और वह गड़बड़ यह हो गयी है कि हमने मनुष्य जाति पर प्रेम की जगह विवाह को थोप दिया है। फिर विवाह होगा और ये सारे रूप पैदा होंगे, और जब दो व्यक्ति एक दूसरे से बंध जाते हैं और उनके जीवन में कोई शांति और तृप्ति नहीं मिलती तो वे दोनों एक दूसरे पर क्रुद्ध हो जाते हैं कि तेरे कारण मुझे शांति नहीं मिल पा रही है। वे कहते हैं, तेरे कारण मुझे शांति नहीं मिल पारही है। वे एक दूसरे को सताना शुरू करते हैं, परेशान करना शुरू करते हैं और इसी

हैरानी, इसी परेशानी, इसी कलह, के बीच बच्चों का जन्म होता है। ये बच्चे पैदाइश से ही विकृत (Perverted) हो जाते हैं। मेरी समझ में, मेरी दृष्टि में जिस दिन आदमी पूरी तरह आदमी के विज्ञान को विकसित करेगा तो शायद आपको पता लगे कि दुनिया में बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट जैसे लोग शायद इसीलिए पैदा हो सके हैं कि उनके मां बाप ने जिस क्षण में संभोग किया था, उस समय वे अपूर्व प्रेम से संयुक्त हुए थे। प्रेम के क्षण में गर्भस्थापन (conception) हुआ था। यह किसी दिन, जिस दिन जन्म विज्ञान पूरी तरह विकसित होगा उस दिन शायद हमको यह पता चलेगा कि जो दुनिया में थोड़े से अद्भुत लोग हुए शांत, आनंदित, प्रभु को उपलब्ध, वे वे ही लोग हैं जिनका पहला अणु प्रेम की दीक्षा से उत्पन्न हुआ था, जिनका पहला अणु प्रेम के जीवन में सराबोर पैदा हुआ था।

पति और पत्नी कलह से भरे हुए हैं, क्रोध से, ईर्ष्या से, एक दूसरे के प्रति संघर्ष से, अहंकार से, एक दूसरे की छाती पर चढ़े हुए हैं, एक दूसरे के मालिक बनना चाह रहे हैं, इसी बीच उनके बच्चे पैदा हो रहे हैं। ये बच्चे किसी आध्यात्मिक जीवन में कैसे प्रवेश पायेंगे।

मैंने सुना है, एक घर में एक मां अपने बेटे और छोटी बेटी को--वे दोनों- बेटे और बेटी बाहर मैदान में लड़ रहे थे, एक दूसरे पर घूंसेबाजी कर रहे थे– उस मां ने उनसे कहा कि अरे यह क्या करते हो, कितनी बार मैंने समझाया कि लड़ा मत करो, आपस में लड़ो मत। उस लड़के ने कहा :– हम लड़ नहीं रहे हैं, हम तो मम्मी डैडी का खेल कर रहे हैं (we are not fighting, we are playing mamma and daddy) जो घर में रोज हो रहा है वह हम दोहरा रहे हैं। यह खेल जन्म के क्षण से शुरू हो जाता है। इस सम्बन्ध में दो चार बातें समझ लेनी बहुत जरूरी हैं।

पहली बात मेरी दृष्टि में जब एक स्त्री और पुरुष परिपूर्ण प्रेम के आधार पर मिलते हैं, उनका सम्भोग होता है, उनका मिलन होता है तो उस परिपूर्ण प्रेम के तल पर उनके शरीर ही नहीं मिलते हैं, उनका मनस भी मिलता है, उनकी आत्मा भी मिलती है। वे एक लयपूर्ण संगीत में डूब जाते हैं, वे दोनों विलीन हो जाते हैं और शायद, शायद परमात्मा ही शेष रह जाता है उस क्षण में। और उस क्षण जिस बच्चे का गर्भाधान होता है वह बच्चा परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि प्रेम के क्षण का पहला कदम उसके जीवन में उठा लिया गया है। लेकिन जो मां-बाप, पति और पत्नी आपस में द्वेष से भरे हैं, घृणा से

भरे हैं, क्रोध से भरे हैं, कलह से भरे हैं वे भी मिलते हैं, लेकिन उनके शरीर ही मिलते हैं, उनकी आत्मा और प्राण नहीं मिलते और उनके शरीर के ऊपरी मिलन से जो बच्चे पैदा होते हैं वे अगर शरीरवादी (materialist) पैदा होते हों, बीमार और रुग्ण पैदा होते हों, और उनके जीवन में अगर कोई आत्मा की प्यास पैदा न होती हो तो दोष उन बच्चों पर मत देना। बहुत दिया जा चुका यह दोष। दोष देना उन मां बाप पर जिनकी छवि लेकर वह जन्मते हैं और जिनका सब अपराध और जिनकी सब बीमारियां लेकर जन्मते हैं और जिनका सब क्रोध और घृणा लेकर जन्मते हैं। जन्म के साथ ही उनका पौधा विकृत हो जाता है। फिर इनको पिलाओ गीता, इनको समझाओ कुरान, इनसे कहो कि प्रार्थनाएं करो। सब झूठी हो जाती है, क्योंकि प्रेम का बीज ही शुरू नहीं हो सका तो प्रार्थनायें कैसे शुरू हो सकती हैं।

जब एक स्त्री और पुरुष परिपूर्ण प्रेम और आनन्द में मिलते हैं तो वह मिलन एक आध्यात्मिक कृत्य (spiritual act) हो जाता है। फिर उसका काम (sex) से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह मिलन फिर कामुक नहीं है, वह मिलन शारीरिक नहीं है, वह मिलन इतना अनूठा है, वह उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी किसी योगी की समाधि। उतना ही महत्वपूर्ण है वह मिलन जब दो आत्माएं परिपूर्ण प्रेम से संयुक्त होती हैं और उतना ही पवित्र है वह कृत्य, क्योंकि परमात्मा उसी कृत्य से जीवन को जन्म देता है, और जीवन को गति देता है। लेकिन तथाकथित धार्मिक लोगों ने, तथाकथित झूठे समाज ने, तथाकथित झूठे परिवार ने यही समझाने की कोशिश की है कि सेक्स, काम, यौन अपवित्र है, घृणित है। हद् पागलपन की बातें हैं। अगर यौन घृणित और अपवित्र है तो सारा जीवन अपवित्र हो गया और घृणित हो गया। अगर सेक्स पाप है तो पूरा जीवन पाप हो गया, पूरा जीवन निन्दित (condemned) हो गया और अगर जीवन ही पूरा निन्दित हो जायगा तो कैसे प्रसन्न लोग उत्पन्न होंगे, कैसे सच्चे लोग उपलब्ध होंगे। जब जीवन ही पूरा का पूरा पाप है तो सारी रात अंधेरी होगयी है। अब इसमें प्रकाश की किरण कहीं से लानी पड़ेगी। तो मैं आपको कहना चाहता हूं, एक नयी मनुष्यता के जन्म के लिए सेक्स की पवित्रता, सेक्स की धार्मिकता स्वीकार करनी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जीवन उससे जन्मता है। परमात्मा उसी कृत्य से जीवन को जन्माता है और परमात्मा ने जिसको जीवन की शुरुआत बनाया है वह पाप नहीं हो सकता है, लेकिन आदमी ने उसे पाप कर दिया है। जो चीज प्रेमसे रहित है वह पाप हो जाती है, जो चीज प्रेम से शून्य

हो जाती है वह अपवित्र हो जाती है। आदमी की जिन्दगी में प्रेम नहीं रहा इस लिए केवल कामुकता (sexuality) रह गई है, सिर्फ यौन रह गया है। वह-यौन पाप हो गया है। वह यौन का पाप नहीं है वह हमारे प्रेम के अभाव का पाप है और उस पाप से सारा जीवन शुरू होता है। फिर ये बच्चे पैदा होते हैं, फिर ये बच्चे जन्मते हैं। और स्मरण रहे, जो पत्नी अपने पति को प्रेम करती है उसके लिए पति परमात्मा हो जाता है। शास्त्रों के समझाने से नहीं होती यह बात। जो पति अपनी पत्नी से प्रेम करता है उसके लिए पत्नी भी परमात्मा हो जाती है क्योंकि प्रेम किसी को भी परमात्मा बना देता है। जिसकी तरफ उसकी आंखें प्रेम से उठती हैं वही परमात्मा हो जाता है। परमात्मा का कोई और अर्थ नहीं है। प्रेम की आंख सारे जगत को धीरे धीरे परमात्मा में देखने लगती है। लेकिन जो एक को ही प्रेम से भरकर नहीं देख पाता और सारे जगत को ब्रह्ममय देखने की बातें करता है उसकी वे बातें झूठी हैं, उन बातों का कोई आधार और अर्थ नहीं है।

क्योंकि जिसने कभी एक को प्रेम नहीं किया उसके जीवन में परमात्मा की कोई शुरुआत ही नहीं हो सकती, क्योंकि प्रेम के ही क्षण में पहली दफा कोई व्यक्ति परमात्मा हो जाता है। वह पहली झलक है प्रभु की। फिर उसी झलक को आदमी बढ़ाता है और एक दिन वही झलक पूरी हो जाती है। सारा जगत उसी रूप में रूपांतरित हो जाता है। लेकिन जिसने पानी की कभी बूंद नहीं देखी वह कहता है मुझे सागर चाहिए, वह कहता है पानी की बूंद से मुझे कोई मतलब नहीं। पानी की बूंद का मैं क्या करूंगा? मुझे तो सागर चाहिए। उससे हम कहेंगे, तूने पानी की बूंद भी नहीं देखी, पानी की बूंद भी नहीं पा सका और सागर पाने चल पड़ा है तो तू पागल है। क्योंकि सागर क्या है? पानी की अनन्त बूंदों का जोड़ है। परमात्मा क्या है? प्रेम की अनन्त बूंदों का जोड़ है। तो प्रेम की अगर एक बूंद निन्दित है तो पूरा परमात्मा निन्दित हो गया। फिर हमारे झूठे परमात्मा खड़े होंगे, मूर्तियां खड़ी होंगी, पूजा पाठ होंगे, सब बकवास होगी लेकिन हमारे प्राणों का कोई अन्तर संबंध उससे नहीं हो सकता। और यह भी ध्यान में रख लेना जरूरी है कि कोई स्त्री अपने पति को प्रेम करती है, अपने प्रेमी को प्रेम करती है तभी प्रेम के कारण, पूर्ण प्रेम के कारण ही वह ठीक अर्थों में मां बन पाती है। बच्चे पैदा कर लेने मात्र से कोई मां नहीं बन जाती। मां तो कोई स्त्री तभी बनती है और पिता कोई पुरुष तभी बनता है जबकि उन्होंने एक दूसरे को प्रेम किया हो। जब पत्नी अपने पति को

प्रेम करती है, अपने प्रेमी को प्रेम करती है तो बच्चे उसे अपने पति का पुनर्जन्म मालूम पड़ते हैं। वह फिर वही सकल है, फिर वही रूप है, फिर वही निर्दोष आंखें हैं जो उसके पति में छिपी थीं, वह फिर प्रकट हुई हैं। उसने अगर अपने पति को प्रेम किया है तो वह अपने बच्चे को प्रेम करती है। बच्चे को किया गया प्रेम पति को किये गये प्रेम की प्रतिध्वनि है। नहीं तो कोई बच्चे को प्रेम नहीं कर सकता है। मां बच्चे को प्रेम नहीं कर सकती, जबतक उसने अपने पति को नहीं चाहा हो पूरे प्राणों से। क्योंकि वह बच्चे उसके पति की प्रतिकृतियां हैं वह उसकी प्रतिध्वनियां हैं, यह पति ही फिर वापस लौट आया है। यह नया जन्म है उसके पति का। यह पति फिर पवित्र और नया होकर वापस लौट आया है। लेकिन पति के प्रति अगर प्रेम नहीं है तो बच्चे के प्रति प्रेम कैसे होगा। ये बच्चे उपेक्षित हो गये हैं। बाप भी तभी कोई बनता है जब अपनी पत्नी को इतना प्रेम करता है कि पत्नी भी उसे परमात्मा दिखायी देती है, तब बच्चा फिर उसकी पत्नी का ही लौटता हुआ रूप है। पत्नी को जब उसने पहली दफा देखा था तब वह जैसी निर्दोष थी, तब जैसी शांत थी, तब जैसी सुन्दर थी, तब उसकी आंखें जैसी झील की तरह थीं, इन बच्चों में फिर वही आंखें वापस लौट आयी हैं। इन बच्चों में फिर वही चेहरा वापस लौट आया है। ये बच्चे फिर उसी छबि में नया होकर आगये हैं जैसे पिछले वसन्त में फूल खिले थे, पिछले वसन्त में पत्ते आये थे। फिर साल बीत गया पुराने पत्ते गिर गये हैं। फिर नयी कोंपलें निकल आयी हैं, फिर नये पत्ते से वृक्ष भर गया है। फिर लौट आया बसन्त, फिर सब नया हो गया है। लेकिन जिसने पिछले बसन्त को ही प्रेम नहीं किया था वह इस बसन्त को कैसे प्रेम कर सकेगा ?

जीवन निरन्तर लौट रहा है। निरन्तर जीवन का पुनर्जन्म चल रहा है। रोज नया होता चला जाता है, पुराने पत्ते गिर जाते हैं, नये आजाते हैं। जीवन की यह सृजनात्मकता (creativity) ही तो परमात्मा है, यही तो प्रभु है। जो इसको पहचानेगा वही तो उसे पहचानेगा। लेकिन न मां बच्चे को प्रेम कर पाती है, न पिता बच्चे को प्रेम कर पाता है और जब मां और बाप बच्चे को प्रेम नहीं कर पाते हैं तो बच्चे जन्म से ही पागल होने के रास्ते पर संलग्न हो जाते हैं। उनको दूध मिलता है, कपड़े मिलते हैं, मकान मिलते हैं लेकिन प्रेम नहीं मिलता है। प्रेम के बिना उनको परमात्मा नहीं मिल सकता है; और सब मिल सकता है।

अभी रूस का एक वैज्ञानिक बन्दरों के ऊपर कुछ प्रयोग करता था। उसने

कुछ नकली बन्दरियां बनायीं। नकली बिजली के यंत्र, हाथपैर उनके बिजली के तारों का ढांचा। जो बन्दर पैदा हुए उनको नकली माताओं के पास कर दिया गया। नकली माताओं से वे चिपक गये। वे पहले दिन के बच्चे, उनको कुछ पता नहीं कि कौन असली है, कौन नकली। वे नकली मां के पास ले जाये गये। पैदा होते ही उसकी छाती से जाकर चिपक गये। नकली दूध है, वह उनके मुंह में जा रहा है, वे पी लेते हैं। वह चिपके रहते हैं। वह बन्दरिया नकली है, वह हिलती रहती है, बच्चे समझते हैं मां उनको हिल हिल कर झुला रही है। ऐसे बीस बन्दर के बच्चों को नकली मां के पास पाला गया और उनको अच्छा दूध दिया गया। मां ने उनको अच्छी तरह हिलाया डुलाया मां कूदती फांदती, सब करती वह बच्चे स्वस्थ दिखायी पड़ते थे, फिर वे बड़े भी हो गये लेकिन वे सब बन्दर पागल निकले, वे सब असामान्य ( Abnormal ) साबित हुए। उनको दूध मिला, उनका शरीर अच्छा हो गया लेकिन उनका व्यवहार विक्षिप्त हो गया। वैज्ञानिक बड़े हैरान हुए कि इनको क्या हुआ। इनको सब तो मिला, फिर ये विक्षिप्त कैसे होगये। एक चीज, जो वैज्ञानिक की लेबोरेटरी में नहीं पकड़ी जा सकी थी वह उनको नहीं मिली। प्रेम उनको नहीं मिला। जो उन २० बन्दरों की हालत हुई वही सारे तीन अरब मनुष्यों की हो रही है। झूठी मां मिलती है, झूठा बाप मिलता है। नकली मां हिलती रहती है, नकली बाप हिलता रहता है और ये बच्चे विक्षिप्त हो जाते हैं और हम कहते हैं कि ये शांत नहीं होते, अशांत होते चले जाते हैं। ये छुरेबाजी करते हैं, ये लड़कियों पर एसिड फेंकते हैं, ये कालेज में आग लगाते हैं, ये बस पर पत्थर फेंकते हैं, ये मास्टर को मारते हैं। मारेंगे, मारे बिना इनको कोई रास्ता नहीं। अभी थोड़ा थोड़ा मारते हैं, कल और ज्यादा मारेंगे और तुम्हारे कोई शिक्षक, तुम्हारे कोई नेता, तुम्हारे कोई धर्मगुरू इनको नहीं समझा सकेंगे। क्योंकि सवाल समझाने का नहीं है आत्मा ही रुग्ण पैदा हो रही है। यह रुग्ण आत्मा प्यास पैदा करेगी, यह चीजों को तोड़ेगी, मिटायेगी, । तीन हजार साल से जो चलती थी बात वह चरम परिणति (climax) पर पहुंच रही है। सौ डिग्री तक हम पानी को गरम करते हैं, पानी भाप बनकर उड़ जाता है, निन्यानवे डिग्री तक पानी बना रहता है फिर सौ डिग्री पर भाप बनने लगता है।

सौ डिग्री पर पहुंच गया है आदमियत का पागलपन। अब वह भाप बनकर उड़ना शुरू हो रहा है। मत चिल्लाइए, मत परेशान होइए। बनने दीजिये भाप और आप उपदेश देते रहिये और आपके साधु सन्त समझाया करें अच्छी अच्छी बातें

और गीता की टीकाएं करते रहें। करते रहो प्रवचन, टीका और गीता पर, और दौहराते रहो पुराने शब्दों को। ये भाप बननी बन्द नहीं होगी। ये भाप बननी तब बन्द होगी जब जीवन की पूरी प्रक्रिया को हम समझेंगे कि कहीं कोई भूल हो रही है, कहीं कोई भूल हुई है और वह कोई आज की भूल नहीं है। चार पांच हजार साल की भूल है। शिखर (climax) पर पहुंच गयी है इसलिए मुश्किल खड़ी हुई जा रही है। ये प्रेम से रिक्त बच्चे जन्मते हैं और प्रेम से रिक्त हवा में पाले जाते हैं। फिर यही नाटक ये दोहरायेंगे मम्मी और डैडी का पुराना खेल। वे फिर बड़े हो जायेंगे, फिर वे यह नाटक दोहरायेंगे फिर वे विवाह में बांधे जायेंगे, क्योंकि समाज प्रेम को आज्ञा नहीं देता। न मां पसन्द करती है कि मेरी लड़की किसी को प्रेम करे। न बाप पसन्द करते हैं कि मेरा बेटा किसी को प्रेम करे। न समाज पसन्द करता है कोई किसी को प्रेम करे। प्रेम तो होना ही नहीं चाहिए। प्रेम तो पाप है। वह तो बिल्कुल ही योग्य बात नहीं है। विवाह होना चाहिए। फिर प्रेम नहीं होगा। फिर विवाह होगा। फिर वही पहिया पूरा का पूरा घूमता रहेगा।

आप कहेंगे कि जहां प्रेम होता है वहां भी कोई बहुत अच्छी हालत नहीं मालूम होती। नहीं मालूम होगी, क्योंकि प्रेम को आप जिस भांति मौका देते हैं। उसमें प्रेम एक चोरी की तरह होता है, प्रेम एक सीक्रेसी की तरह होता है। प्रेम करने वाले डरते हुए प्रेम करते हैं। घबराये हुए प्रेम करते हैं। चोरों की तरह प्रेम करते हैं, अपराधी की तरह प्रेम करते हैं। और सारा समाज उनके विरोध में है, सारे समाज की आंखें उनपर लगी हुई हैं। सारे समाज के विद्रोह में वे प्रेम करते हैं। ये प्रेम भी स्वस्थ नहीं हैं, प्रेम के लिए स्वस्थ हवा नहीं है। इसके परिणाम भी अच्छे नहीं हो सकते। प्रेम के लिए समाज को हवा पैदा करनी चाहिए। मौका पैदा करना चाहिए। अवसर पैदा करना चाहिए। प्रेम की शिक्षा दी जानी चाहिए, दीक्षा दी जानी चाहिए। प्रेम की तरफ बच्चों को विकसित किया जाना चाहिए क्योंकि वही उनके जीवन का आधार बनेगा, वही उनके पूरे जीवन का केन्द्र बनेगा। उसी केन्द्र से उनका जीवन विकसित होगा। लेकिन उसकी कोई बात ही नहीं है, उससे हम दूर खड़े रहते हैं, आखें बन्द किये खड़े रहते हैं। न मां बच्चे से प्रेम की बात करती है, न बाप। न उन्हें कोई सिखाता है कि प्रेम जीवन का आधार है, न उन्हें कोई निर्भय बनाता है कि तुम प्रेम के जगत में निर्भय होना। न कोई उनसे कहता है कि जब तक तुम्हारा किसी से प्रेम न हो तबतक तुम विवाह मत करना, क्योंकि वह विवाह गलत होगा, झूठा होगा, पाप होगा, वह सारी कुरूपता की

जड़ होगी और सारी मनुष्यता को पागल करने का कारण होगा।

अगर मनुष्य जाति को परमात्मा के निकट लाना है तो पहला काम परमात्मा की बात मत करिए। मनुष्य जाति को प्रेम के निकट ले आइए। जीवन जोखिम के काम में हैं। न मालूम कितने खतरे हो सकते हैं। जीवन की बनी बनायी व्यवस्था में, न मालूम कितने परिवर्तन करने पड़ सकते हैं। लेकिन मत करिये परिवर्तन, तो यह समाज अपने ही हाथ मौत के किनारे पहुँच गया है इसलिए मर जायगा। यह बच नहीं सकता। प्रेम से रिक्त लोग ही युद्धों को पैदा करते हैं। प्रेम से रिक्त लोग ही अपराधी बनते हैं। प्रेम से रिक्तता ही अपराध ((criminality) की जड़ है, और सारी दुनिया में अपराधी फैलते चले जाते हैं।

जैसा मैंने आपसे कहा कि अगर किसी दिन जन्म विज्ञान पूरा विकसित होगा तो हम शायद पता लगा पायें कि कृष्ण का जन्म किन स्थितियों में हुआ। किस समस्वरता (Harmony) में, कृष्ण के मां बाप ने किस प्रेम के क्षण में गर्भ स्थापन (conception) किया इस बच्चे का। किस प्रेम के क्षण में यह बच्चा अवतरित हुआ, तो शायद हमें दूसरी तरफ यह भी पता चल जाय कि हिटलर किस अप्रेम के क्षण में पैदा हुआ होगा। मुसोलिनी किस क्षण पैदा हुआ होगा। तैमूरलंग, चंगेज खां किस अवसर पर पैदा हुए होंगे। हो सकता है यह पता चले कि चंगेज खां संघर्ष, घृणा और क्रोध से भरे मां बाप से पैदा हुआ हों। जिन्दगी भर फिर वह क्रोध से भरा हुआ है। वह जो क्रोध का मौलिक वेग (original momentum) है– वह उसको जिन्दगी भर दौड़ाये चला जा रहा है। चंगेज खां जिस गांव में गया लाखों लोगों को कटवा दिया। तैमूरलंग जिस राजधानी में जाता दस दस हजार बच्चों की गर्दनें कटवा देता। भाले में छिदवा देता। जुलूस निकालता तो दस हजार बच्चे की गर्दने लटकी हुई हैं भालों के ऊपर। पीछे तैमूर जा रहा है। लोग पूछते, यह तुम क्या करते हो, तो वह कहता कि – ताकि लोग याद रखें कि तैमूर कभी इस नगरी में आया था। इस पागल को याद रखने की और कोई बात याद नहीं पड़ती थी। हिटलर ने जर्मनी में साठ लाख यहूदियों की हत्या की। पांच सौ यहूदी रोज मारता रहा। स्टैलिन ने रूस में साठ लाख लोगों की हत्या की। जरूर इनके जन्म के साथ कोई गड़बड़ हो गयी। जरूर ये जन्म के साथ ही पागल पैदा हुये। उन्माद(Nearosis) इनके जन्म के साथ इनके खून में आया और फिर वह इनको फैलाता चला गया। और पागलों में बड़ी ताकत होती है। पागल कब्जा कर लेते हैं और पागल दौड़कर हावी हो जाते हैं– धन पर, पद पर, यश पर। और सारी दुनिया को विकृत करते

हैं। पागल ताकतवर होते हैं। यह जो पागलों ने दुनिया बनायी है यह दुनिया तीसरे महायुद्ध के करीब आ गयी है। सारी दुनिया मरेगी। पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या की गयी, दूसरे महायुद्ध में साड़े सात करोड़ लोगों की हत्या की गयी। अब तीसरे में कितनी की जायगी ? मैंने सुना है,– जब आइन्सटीन मर कर भगवान के घर पहुंच गया तो भगवान ने उससे पूछा कि मैं बहुत घबराया हुआ हूं। तीसरे महायुद्ध के सम्बन्ध में कुछ बताओगे ? क्या होगा ? उसने कहा, तीसरे के बाबत कहना मुश्किल है, चौथे के सम्बन्ध में कुछ जरूर बता सकता हूं। भगवान ने कहा तीसरे के बाबत नहीं बता सकते चौथे के बाबत कैसे बताओंगे ? आइन्सटीन ने कहा, एक बात बता सकता हूं चौथे के बाबत, कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा क्योंकि तीसरे में सब आदमी समाप्त हो जायेंगे। चौथे के होने की कोई सम्भावना नहीं है और तीसरे के बाबत कुछ भी कहना मुश्किल है। साढ़े तीन अरब पागल आदमी क्या करेंगे तीसरे महायुद्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। क्या स्थिति होगी ?

प्रेम से वियुक्त मनुष्य मात्र एक दुर्घटना है। तो मैं अंत में यह बात निवेदन करना चाहता हूं। मेरी बातें बड़ी अजीब लगी होंगी क्योंकि ऋषि मुनि इस तरह की बातें करते ही नहीं। मेरी बात बहुत अजीब लगी होगी। आपने सोचा होगा कि मैं भजन कीर्तन का कोई नुस्खा बताऊंगा। आपने सोचा होगा कि मैं कोई माला फेरने की तरकीब बताऊंगा। आपने सोचा होगा कि मैं कोई आपको तावीज दे दूंगा जिसको बांधकर आप परमात्मा से मिल जायें। ऐसी कोई बात मैं आपको नहीं बता सकता हूं। ऐसे बताने वाले सब बेईमान हैं, धोखेबाज हैं। समाज को उन्होंने बहुत बर्बाद किया है। समाज की जिन्दगी को समझने के लिए मनुष्य के पूरे विज्ञान को समझना जरूरी है। परिवार को, दंपत्ति को, समाज को – उसकी पूरी व्यवस्था को समझना जरूरी है कि कहां क्या गड़बड़ हुई है। अगर सारी दुनियां यह तय करले कि हम पृथ्वी में एक प्रेम का घर बनायेंगे, झूठे विवाह का नहीं। हां, प्रेम से विवाह निकले तो वह सच्चा विवाह होगा। हम सारी दुनियां को प्रेम का एक घर बनायेंगे। जितनी कठिनाइयां होंगी, मुश्किलें होंगी, अव्यवस्था होगी उसको सम्हालने का हम कोई उपाय खोजेंगे। उस पर विचार करेंगे लेकिन दुनिया से हम यह अप्रेम का जो जाल है इसको तोड़ देंगे और प्रेम की एक दुनियां बनायेंगे, तो शायद पूरी मनुष्य जाति बन सकती है और स्वस्थ्य हो सकती है। और मैं आपको यह कहना चाहता हूं कि अगर सारे जगत् में प्रेम के केन्द्र पर परिवार बन जाय तो अति मानव (Superman) की कल्पना, जो हजारों

वर्षों से रही है, आदमी को महामानव बनाने की वह जो नीत्से कल्पना करता है और अरविन्द कल्पना करते हैं, वह कल्पना पूरी हो सकती है। लेकिन न तो अरविन्द की प्रार्थनाओं से और न नीत्से के द्वारा पैदा किये गये फैसेजिम से वह सपना पूरा हो सकता है अगर पृथ्वी पर हम प्रेम की प्रतिष्ठा को वापस लौटा लायें। अगर प्रेम जीवन में वापस लौट आये, सम्मानित हो जाय। अगर प्रेम एक आध्यात्मिक मूल्य ले ले तो नये मनुष्य का निर्माण हो सकता है – नयी संतति का, नयी पीढ़ियों का, नये आदमी का। और वह आदमी, वह बच्चा, वह भ्रूण जिसका पहला अणु प्रेम से जन्मेगा, विश्वास किया जा सकता, आश्वासन दिया जा सकता है कि उसकी अंतिम श्वांस परमात्मा में निकलेगी।

प्रेम है प्रारम्भ, परमात्मा है अंत। वह अंतिम सीढ़ी है। जो प्रेम को ही नहीं पाता है वह परमात्मा को तो पा ही नहीं सकता, यह असंभावना है। लेकिन जो प्रेम में दीक्षित हो जाता है और प्रेम में विकसित हो जाता है और प्रेम की श्वांसों में चलता है और प्रेम के फूल जिसकी श्वांस बन जाती है और प्रेम जिसका अणु अणु बन जाता है और जो प्रेम में बढ़ता जाता है, फिर एक दिन वह पाता है कि प्रेम की जिस गंगा में वह चला था वह गंगा अब किनारे छोड़ रही है और सागर बन रही है। एक दिन वह पाता है कि गंगा के किनारे मिटते जाते हैं और अनन्त सागर आ गया सामने। छोटी सी गंगा की धारा थी गंगोत्री में, छोटी सी प्रेम की धारा होती है शुरू में। फिर वह बढ़ती है, फिर वह बड़ी होती है, फिर वह पहाड़ों और मैदानों को पार करती है। और एक वक्त आता है कि किनारे छूटने लगते हैं। जिस दिन प्रेम के किनारे छूट जाते हैं उसी दिन प्रेम परमात्मा बन जाता है। जबतक प्रेम के किनारे होते हैं तबतक वह परमात्मा नहीं होता है। गंगा नदी होती है जबतक कि वह इस जमीन के किनारे से बंधी होती है। फिर किनारे छूटते हैं और सागर से मिल जाती है। फिर वह परमात्मा से मिल जाती है।

प्रेम की सरिता और परमात्मा का सागर है। लेकिन हम प्रेमकी सरिता ही नहीं हैं, हम प्रेम की नदियां ही नहीं हैं और हम बैठे हैं हाथ जोड़े और प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि हमको भगवान चाहिए। जो सरिता नहीं है वह सागर को कैसे पायेगी। सारी मनुष्य जाति के लिए पूरा आन्दोलन चाहिए। पूरी मनुष्य जाति के आमूल परिवर्तन की जरूरत है। पूरा परिवार बदलने की जरूरत है। बहुत कुरूप है हमारा परिवार। वह बहुत सुन्दर हो सकता है लेकिन केवल प्रेम के केन्द्र पर ही। पूरे समाज को बदलने की जरूरत है और तब एक धार्मिक

मनुष्यता जरूर पैदा हो सकती है।

प्रेम प्रथम-परमात्मा अंतिम। और क्यों प्रेम परमात्मा पर पहुंच जाता है? क्योंकि प्रेम है बीज और परमात्मा है वृक्ष। प्रेम का बीज ही फिर फूटता है और वृक्ष बन जाता है। सारी दुनियां की स्त्रियों से मेरा कहने का यह मन होता है और खासकर स्त्रियों से, क्योंकि पुरुष के लिए प्रेम और बहुत सी जीवन की दिशाओं में एक दिशा है। स्त्री के लिए प्रेम अकेली दिशा है, पुरूष के लिए प्रेम और बहुत से जीवन आयामों में एक आयाम है। उसके और भी आयाम हैं व्यक्तित्व के, लेकिन स्त्री का एक ही आयाम, एक ही दिशा है, वह है प्रेम। स्त्री पूरी प्रेम है। पुरुष प्रेम भी है और दूसरी चीज भी है। अगर स्त्री का प्रेम विकसित हो और वह समझे, प्रेम की कीमिया, प्रेम का रसायन और बच्चों को दीक्षा दे प्रेम की और प्रेम के आकाश में उठने की शिक्षा दे। उनके पंखों को मजबूत करे, लेकिन अभी तो हम काट देते हैं पंख। विवाह की जमीन पर सरको, प्रेम के आकाश में मत उड़ना। जरूर आकाश में उड़ना जोखिम का होता है और जमीन पर चलना जोखिम का नहीं होता है। लेकिन जो जोखिम नहीं उठाते हैं वे जमीन पर रेंगने वाले कीड़े हो जाते हैं और जो जोखिम उठाते हैं वे दूर अनंत आकाश में उड़ने वाले बाज पक्षी सिद्ध होते हैं।

आदमी रेंगता हुआ कीड़ा हो गया है क्योंकि हम सिखा रहे हैं, कोई भी जोखिम (Risk) न उठाना, कोई खतरा (Danger) मत उठाना? अपने घर का दरवाजा बन्द करो और जमीन पर सरको। आकाश में मत उड़ना। जबकि होना ये चाहिए कि हम प्रेम की जोखिम सिखायें, प्रेम का खतरा सिखायें, प्रेम का अभय सिखायें और प्रेम के आकाश में उड़ने के लिए उनके पंखों को मजबूत करें। और चारों तरफ जहां भी प्रेम पर हमला होता हो उसके खिलाफ खड़े हो जायें, प्रेम को मजबूत करें, ताकत द। प्रेम के जितने दुश्मन खड़े हैं दुनिया में उनमें नीतिशास्त्री भी हैं। थोथे हैं वे नीति शास्त्री, क्योंकि प्रेम के विरोध में जो हो वह क्या नीतिशास्त्री होगा। साधु संन्यासी खड़े हैं प्रेम के विरोध में, क्योंकि वे कहते हैं कि यह सब पाप है, यह सब बंधन है, इसको छोड़ो। परमात्मा की तरफ चलो।

जो आदमी कहता है कि प्रेम को छोड़कर परमात्मा की तरफ चलो, वह परमात्मा का शत्रु है क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त तो परमात्मा की तरफ जाने का कोई रास्ता ही नहीं है। बड़े बूढ़े भी खड़े हैं प्रेम के विपरीत क्योंकि उनका अनुभव कहता है कि प्रेम खतरा है। लेकिन अनुभवी लोगों से जरा सावधान रहना क्योंकि

जिन्दगी में कभी कोई नया रास्ता वे नहीं बनने देते। वे कहते हैं कि पुराने रास्ते का हमें अनुभव है, हम पुराने रास्ते पर चले हैं, उसीपर सबको चलना चाहिए। लेकिन जिन्दगी को रोज नया रास्ता चाहिए। जिन्दगी रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई रेलगाड़ी नहीं है कि बनी पटरियों पर दौड़ती रहे और दौड़ेगी तो एक मशीन हो जायेगी। जिन्दगी तो एक सरिता है जो रोज एक नया रास्ता बना लेती है पहाड़ों में, मैदानों में, जंगलों में। अनूठे रस्ते से निकलती है। अनजान जगत् में प्रवेश करती है और सागर तक पहुंच जाती है।

नारियों के सामने आज एक ही काम है। वह काम यह नहीं है कि अनाथ बच्चों को पढ़ा रही हैं बैठकर। तुम्हारे बच्चे भी तो सब अनाथ हैं। नाम के लिए वे तुम्हारे बच्चे हैं उनकी मां है, न उनका बाप। समाजसेवक स्त्रियां सोचती हैं कि अनाथ बच्चों का अनाथालय खोल दिया, बहुत बड़ा काम कर दिया। उनको पता नहीं कि तुम्हारे बच्चे भी अनाथ है। तुम दूसरों के अनाथ बच्चों को शिक्षा देने जारही हो तो तुम पागल हो। तुम्हारे बच्चे खुद अनाथ हैं (orphans) कोई नहीं हैं उनका, न तुम हो, न तुम्हारे पति हैं। न उनकी मां है और न उनका कोई है, क्योंकि वह प्रेम ही नहीं है जो उनको सनाथ बनाता। सोचते हैं हम आदिवासी बच्चों को जाकर शिक्षा दे रहे हैं। तुम आदिवासी बच्चों को जाकर शिक्षा दो, तुम्हारे बच्चे धीरे धीरे आदिवासी हुए चले जारहे हैं। ये जो वीटल हैं, बीटनिक हैं, फलां हैं ढिकां हैं, ये फिर से आदमी के आदिवासी होने की शकलें हैं। तुम सोचते हो, स्त्रियां सोचती हैं कि जायें और सेवा करें। जिस समाज में प्रेम नहीं है उस समाज में सेवा कैसे हो सकती है। सेवा तो प्रेम की सुगन्ध है। मैं तो एकही बात आज कहना चाहूंगा। आज तो सिर्फ एक धक्का आपको दे देना चाहूंगा ताकि आपके भीतर चिन्तन शुरू हो जाय। हो सकता है मेरी बातें आपको बुरी लगें। लगें तो बहुत अच्छा है। हो सकता है मेरी बातों से आपको चोट लगे, तिलमिलाहट पैदा हो। भगवान करें जितनी ज्यादा हो जाय उतना अच्छा है, क्योंकि उससे कुछ सोच विचार पैदा होगा। हो सकता है मेरी सब बातें गलत हों इसलिए मेरी बात मान लेने की कोई भी जरूरत नहीं है लेकिन मैंने जो कहा है उसपर आप सोचना। मैं फिर दोहरा देता हूं दो चार सूत्रों को और कहकर अपनी बात पूरी किये देता हूं।

आज तक का मनुष्य का समाज प्रेम के केन्द्र पर निर्मित नहीं है इसीलिए विक्षिप्तता है, इसीलिए पागलपन है, इसीलिए युद्ध है, इसीलिए आत्महत्याएं हैं, इसीलिए अपराध हैं। प्रेम की जगह आदमी ने एक झूठा स्थानापन्न (substitute)

विवाह का ईजाद कर लिया है। विवाह के कारण वेश्याएं हैं, गुंडे हैं। विवाह के कारण शराब है, विवाह के कारण बेहोशियां हैं। विवाह के कारण भागे हुए संन्यासी हैं, विवाह के कारण मंदिरों में भजन करनेवाले झूठे लोग हैं। जबतक विवाह है तबतक यह रहेगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवाह मिट जाये, मैं यह कहरहा हूं कि विवाह प्रेम से निकले। विवाह से प्रेम नहीं निकलता है। प्रेम से विवाह निकले तो शुभ है और विवाह से प्रेम को निकालने की कोशिश की जाय तो यह प्रेम झूठा होगा। क्योंकि जबरदस्ती कभी भी कोई प्रेम नहीं निकाला जा सकता है। प्रेम या तो निकलता है या नहीं निकलता है। जबरदस्ती नहीं निकाला जा सकता है।

तीसरी बात मैंने यह कही कि जो मां बाप प्रेम से भरे हुए नहीं हैं उनके बच्चे जन्म से ही विकृत (perverted) एब्नार्मल, रुग्ण और बीमार पैदा होंगे। मैंने यह कहा, जो मां बाप, जो पति पत्नी, जो प्रेमी युगल प्रेम के संभोग में लीन नहीं होते हैं वे केवल उन बच्चों को पैदा करेंगे जो शरीरवादी होंगे, भौतिकवादी होंगे जिनकी जीवन की आंख पदार्थ के ऊपर कभी नहीं उठेगी, जो परमात्मा को देखने के लिए अंधे पैदा होंगे। आध्यात्मिक रूप से अंधे बच्चे हम पैदा कर रहे हैं।

मैंने आपसे चौथी बात यह कही कि मां बाप अगर एक दूसरे को प्रेम करते हैं तो ही वे बच्चों के मां बनेंगी, बाप बनेंगे क्योंकि बच्चे उनकी ही प्रतिध्वनियां हैं, वे आया हुआ नया वसंत हैं, वे फिर से जीवन के दरख्त पर लगी हुई कोंपलें हैं लेकिन जिसने पुराने वसन्त को प्रेम नहीं किया वह नये बसन्त को कैसे प्रेम करेगा ?

और मैंने अंतिम बात यह कही कि प्रेम शुरुआत है और परमात्मा अंतिम विकास है। प्रेम में जीवन शुरू हो तो परमात्मा में पूर्ण होता है। प्रेम बीज बने तो परमात्मा अंतिम वृक्ष की छाया बनता है, प्रेम गंगोत्री हो तो परमात्मा का सागर उपलब्ध होता है। जिसके मन की कामना हो कि परमात्मा तक जाये वह अपने जीवन को प्रेम के गीत से भर ले। और जिसकी भी आकांक्षा हो कि पूरी मनुष्यता परमात्मा के जीवन से भर जाय, उस सारी मनुष्यता को प्रेम की तरफ ले जाने के मार्ग पर जितनी बाधाएं हों वह उनको तोडें, मिटाए और प्रेम को उन्मुक्त आकाश दे ताकि एक दिन एक नये मनुष्य का जन्म हो सके। पुराना मनुष्य रुग्ण था, कुरूप था, अशुभ था। पुराने मनुष्य ने अपने आत्मघात का इन्तजाम कर लिया है। वह आत्महत्या कर रहा है। सारे जगत् में वह एक-साथ आत्मघात कर लेगा। जागतिक आत्मघात (Universal-Suicide) का उपाय कर लिया गया है। अगर इसे बचाना है तो प्रेम की वर्षा, प्रेम की भूमि और प्रेम के आकाश को निर्मित कर लेना जरूरी है।

# समाचार विभाग :

## धर्म चक्र प्रवर्तन :

### आचार्यश्री के देश व्यापी कार्यक्रम :

**"शांति में, मौन में, शून्य में खडे होकर जीवन को देखना ही धर्म है। वही है धर्म की कला उसीसे उससे मिलन होता है जो कि सत्य है। प्रेम की भाषा में वह सत्य ही परमात्मा है।"**

### बंबई क्रास मैदान में विराट सत्संग :

आचार्यश्री ७ अप्रैल की दोपहर बंबई पधारे। संध्या ही उन्होंने क्रास मैदान में आयोजित सत्संग की प्रथम सभा को संबोधित किया। जैसे ग्रीष्म के उत्ताप के बाद भूमि जल के लिये प्यासी होती है, ऐसे ही हजारों व्यक्ति उनके अमृत शब्दों के लिये आतुर रहते हैं। और जो उनके शब्दों के साथ यात्रा करने में सफल हो जाता है, वह उन्हें सुनते सुनते ही किसी और ही लोक में प्रविष्ट हो जाता है। उनके श्रोताओं में इसलिये सैकडों व्यक्ति ध्यानस्थ देखे जा सकते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से ही जैसे चित्त शांत और शीतल हो उठता है। उन्होंने अपने इस प्रथम उद्‌बोधन में कहा: "विचार परमात्मा का मार्ग नहीं है। विचार सत्य का द्वार नहीं है। सत्यता है अज्ञात और विचार केवल उसे ही विचार सकता है जो कि जाना ही हुआ है। वह ज्ञात का अतिक्रमण करने में समर्थ नहीं है। वह ज्ञात में ही गति है। वह स्मृति में ही परिभ्रमण है और इसीलिये वह नये में और अनजान में और अज्ञात में नहीं ले जाता है। वह तो अतीत में बासे में और मृत में ही भटकता रहता है। और सत्य अतीत नहीं है। वह चिर नूतन है। वह

तो नित नवीन है। वह तो सदा ही नया और जीवन्त है। इसलिये उसे जानने और जीने के लिये विचार से बिल्कुल ही भिन्न दिशा उपलब्ध करनी होती है। वह दिशा है निर्विचार की। विचार को जानें दें और निर्विचार को आने दें। विचार की तरंगों में ही सत्य का शांत सागर छिपा है। शांत होकर, शून्य होकर जीवन को देखें। उसी दर्शन में उससे मिलन होता है जो कि सत्य है। और उस सत्य को ही प्रेम परमात्मा कहता है।"

★

**"जीवन को प्रेम करो. . . . . जीवन को उसकी समस्त गहराईयों में जिओ. . . क्योंकि जीवन के मंदिर में ही परमात्मा का आवास है।"**

## बंबई सी. जे. हाल में प्रश्नोत्तरी :

आचार्यश्री ने ७, ८, ९, १० अप्रैल संध्या क्रासमैदान की विशाल सभाओं को संबोधित किया और प्रतिदिन सुबह सी. जे.. हाल में जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर दिये। उन्होंने इन चर्चाओं के दौरान कहा : "जीवन से लडो मत। शत्रुता की दृष्टि सम्यक् नहीं है। मैत्री के प्रकाश में ही जीवन के रहस्य उद्घाटित होते हैं। सर्वप्रथम चाहिये जीवन की पूर्ण स्वीकृति। जीवन के प्रति सद्भाव। लेकिन हजारों वर्षों की जीवन विरोधी शिक्षाओं ने मनुष्य से यह भाव ही छीन लिया है। और इस भाव के अभाव में हम जीवन को जानने से वंचित रह जाते हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। जीवन तो साथ है... प्रतिपल हम उसमें हैं। हम वही हैं। जैसे मछली सागर में है ऐसे हम जीवन में हैं। लेकिन मछली यदि सागर विरोधी हो जावे तो उसकी जो गति हो वही हमारी गति हो गई है। इसलिये मैं कहता हूं : जीवन को प्रेम करो, क्योंकि जीवन की गहराईयों में परमात्मा का आवास है।"

★

**"धर्म तो एक है। धर्म तो स्वरूप है। लेकिन हमने तो चांद को दिखानेवाली उंगलियां ही पकड रखी हैं और उन्हें ही चांद समझ रहे हैं। इससे धर्म तो विलीन हो गया है और धर्मों की भीड लग गई है।"**

## महावीर जयंती पर पूना में प्रवचन :

आचार्यश्री ११ अप्रैल को पूना पधारे। सुबह ही उन्होंने हिन्द विजय थियेटर में आयोजित महावीर जयंती की सभा को संबोधित किया। उन्होंने कहा :

"महावीर अर्थात् सत्य, महावीर अर्थात् अहिन्सा। लेकिन हम तो व्यक्तियों को पकड लेते हैं और सत्यों को भूल जाते हैं। चाहिये यह कि सत्य को पकडें और व्यक्तियों को छोडें। सत्य ही सार है। और वह सत्य प्रत्येक में है। व्यक्ति तो इशारे हैं। महावीर, बुद्ध, कृष्ण या क्राइस्ट तो इशारे हैं .... उसी की तरफ जो कि हम सबमें छिपा है और प्रगट होने को आकुल है। लेकिन हम इशारों को पकड कर बैठ गये हैं और इशारों की ही पूजा कर रहे हैं। मनुष्य की यह विक्षिप्तता अद्भुत है और इस विक्षिप्तता को ही धर्म समझा जा रहा है। जैसे कोई राह के किनारे लगे संकेत चिन्हों को ही मंजिल समझ ले, ऐसी ही यह दशा है। सत्य तो एक ही है लेकिन इशारे तो अनंत हो सकते हैं और इन इशारों को पकडने के कारण ही हिन्दू, जैन, मुसलमान, और ईसाई ऐसे संप्रदाय पैदा हो गये हैं। जो इन इशारों के ऊपर उठता है और उसकी खोज करता है जिसकी ओर कि इशारा इंगित करता था, वह स्वयं पर और सत्य पर पहुंच जाता है। सत्य का वह अनुभव ही धर्म है। वह धर्म एक ही है क्योंकि धर्मका अर्थ है स्वभाव. . . स्वरूप। वह तो एक ही हो सकता है। वहां तो पहुंचकर स्वयं का व्यक्तित्व भी छूट जाता है। वहां तो बस वही रह जाता है जो है।"

★

**"धर्म के मंदिर हैं और अधर्म के देवता। इसलिये प्रभु के मंदिर में चढाये फूल शैतान को चढते रहे हैं। क्या समय नहीं आ गया है कि हम वस्त्रोंको उघाडें और देखें कि पुरोहित की आड में कौन खडा है ?"**

## पूना में जनसभा :

आचार्यश्री ने ११ अप्रैल की रात्रि एक विशाल जनसभा को संबोधित किया। उनकी क्रांतिकारी वाणी अनेक हृदयों को आन्दोलित कर देती है। वे तो एक अग्नि की भांति हैं। उनसे गुजरकर सिर्फ स्वर्ण ही शेष बचता है और कूडा करकट जलकर राख हो जाता है। उन्होंने यहां कहा : "धर्म की आड में अधर्म जी रहा है। पुरोहित की आड में परमात्मा नहीं, शैतान है। धर्म का मंदिर है लेकिन आवास उसमें अधर्म का है। शैतान की यह तरकीब बहुत कारगर सिद्ध हुई है। क्योंकि अधर्म स्पष्ट हो तो उससे लडना बहुत आसान है। लेकिन जब वह धर्म के शुभ्र वस्त्रों में आता है तब बडी कठिनाई होती है। क्योंकि तब उसे पहचानना ही कठिन हो जाता है। सदियों से मनुष्यता इसी कठिनाई से गुजर रही है। इसीलिये तो यह विरोधाभासी घटना घट सकी है कि धर्मो की बाढ आती गई है और साथ ही उसी

अनुपात में अधर्म भी बढता गया है। लेकिन अब जागने का समय आ गया है और धर्म के वस्त्रों को उघाडकर देखने की जरुरत है कि कहीं उसके भीतर अधर्म तो नहीं बैठा हुआ है ?"

★

**"धर्म का रहस्य पूछना है तो पूछो बीज से. . . पूछो बूंद से ? बीज मिटता है तो वृक्ष हो जाता है और मनुष्य भी क्या एक बीज नहीं है ? बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है ? और मनुष्य भी क्या एक बूंद नहीं है ?"**

## सिन्धी समाज जबलपुर में प्रवचन :

आचार्यश्री ने १४ अप्रैल की रात्रि सिन्धी समाज द्वारा आयोजित एक सभा को उद्‌बोधित किया। उन्होंने यहां कहा : "मैं तो एक ही मार्ग जानता हूं, जीवन को पाने का। मैं तो एकही द्वार जानता हूं प्रभु के मंदिर का और आप पूछते हैं कि वह मार्ग क्या है . . . वह द्वार "क्या है वह मार्ग है स्वयं को मिटा देने का। वह द्वार है शून्य हो जाने का। और मेरी बात का भरोसा न हो तो पूछो बीज से . . . . पूछो बूंद से। मैंने उन्हीं से पूछा है और जाना है। बीज वृक्ष हो जाता है। बूंद सागर हो जाती है। क्या आप परमात्मा होना चाहते हैं ? तो मार्ग वही है. . . द्वार वही है जो कि बीज का है ? जो कि बूंद का है। मिटो ताकि पा सको। खो दो ताकि खोज सको। आह ! कितनी सुगम है बात लेकिन अहंकार को खोने का तो हमें स्मरण ही नहीं आता है ?"

★

**"जीवन परम सुन्दर है। लेकिन उनके लिये ही जिनके कि अंतस् सौन्दर्य से भरे हैं। जीवन तो दर्पण है और उसमें हम वही देख पाते हैं जो कि हम हैं।"**

## जबलपुर में कला प्रदर्शनी का उद्‌घाटन :

आचार्यश्री ने १७ अप्रैल को रात्रि कला निकेतन में आयोजित वार्षिक कला प्रदर्शनी का उद्‌घाटन किया। एक बडी संख्या में कला प्रेमी उन्हें सुनने को एकत्रित हुये। जीवन का कोई भी पहलू क्यों न हो, उनकी मौलिक दृष्टि सदा ही नये आयामों का अनावरण करती है। उन्होंने यहां कहा: "जीवन सौन्दर्य है। लेकिन केवल उन्हीं के लिये जिनके कि अंतस् भी सुन्दर हैं। क्योंकि जीवन तो वस्तुतः एक दर्पण है और उसमें हमें वही दिखाई पडता है जो कि हममें है। वह हमारा ही प्रेक्षपण है। इसलिये कला का मूल आधार सुन्दर अंतस् के सृजन में है। वह विषय वस्तु का उतना सृजन नहीं है जितना कि अंतस् का। और जब कला विषयगत् ही रह जाती

है, तब वह तकनीक से ज्यादा नहीं होती है । कला की भांति पूर्ण प्रतिष्ठा तो तभी होती है जब वह आत्मगत होती है । वह धर्म की सूक्ष्मतम विधा है । वह सत्य साक्षात्कार की सूक्ष्मतम कीमिया है । लेकिन मात्र विषयगत् होकर वह ऐंद्रिक ही रह जाती है । विषयगत् दृष्टि की न कोई गहराई है, न कोई ऊंचाई । वह तो जीवन की सतह पर ही जीना है । कला इतनी सतही होकर आत्मघात कर लेती है । क्योंकि जहां गहराई नहीं, ऊंचाई नहीं, वहां कला की संभावना ही कहां है ? आज कला के जगत् में ऐसा ही आत्मघात चल रहा है । मैं आपको, आप नवोदित कलाकारों को इससे सावधान करना चाहता हूं । जीवन की गहराईयों में... अंतस् में चाहिये सौन्दर्य का सृजन । आत्मा होना चाहिये सुन्दर । फिर उस सुन्दर आत्मा का अनुभव ही परमात्मा का साक्षात्कार बन जाता है ।"

★

**"धर्म को जानना है. . . तो भूलकर भी शास्त्रों में मत खोजना । धर्म मृत शब्दों में कहां ? वह तो सदा ही जीवन्त प्रेम में है ।"**

## लाला लाजपतराय भवन, दिल्ली में प्रवचन :

आचार्यश्री २२ अप्रैल को दिल्ली पधारे । सर्वेन्ट्स आफ पीपुल सोसाईटी की ओर से लाला लाजपतराय भवन में आयोजित सभा को उन्होंने संबोधित किया । उन्होंने यहां कहा : "धर्म जीवन के अतिरिक्त और क्या है ? इसलिये धर्म नहीं, सीखें प्रेम । क्योंकि जहां प्रेम है वहां धर्म है । लेकिन हम तो शास्त्र सीख लेते हैं... शब्द सीख लेते हैं. . . सिद्धांत सीख लेते हैं और स्मृति के इस पोषण को ही धर्म समझ लेते हैं । धर्म बुद्धि का पोषण या प्रशिक्षण नहीं है । धर्म तो हृदय का आविर्भाव है । वह स्मृति की शिक्षा नहीं, अंतस् की दीक्षा है । वह तो अंतःकरण का जागरण है और अंतःकरण कैसे जागता है ? सूर्य के प्रकाश में जैसे फूल खिल उठते हैं और पक्षी गीत गाने लगते हैं, ऐसे ही प्रेम के प्रकाश में हृदय के फूल खिल उठते हैं और प्राणों के पक्षी गीत गाने लगते हैं । आह ! प्रेम के इस छोटे शब्द में. . . इन ढाई अक्षरों में वह सब छिपा है जो कि समस्त शास्त्रों को मिलाकर भी नहीं है ।"

★

**"आनन्द निकट है । आत्मा निकट है । अमृत निकट है । लेकिन क्या निर्विचार में प्रवेश की कला आपको ज्ञात है ? "**

## राजधानी में विचारगोष्ठी :

आचार्यश्री के दर्शन और मिलन के लिये दिल्ली में लाला सुन्दरलालजी के निवास स्थान पर एक विचारगोष्ठी हुई । इस विचारगोष्ठी में उन्होंने कहा:

"धर्म क्या है ? विश्वास ? नहीं । धर्म है विवेक । विश्वास तो है अंधापन और विवेक है चैतन्य । चेतना जितनी जागती है उतनी ही धार्मिक हो जाती है । चेतना का निद्रित होना ही अधर्म है । निद्रा में, मूर्च्छा में, बेहोश से जीना ही अधर्म है । जाग्रत, चेतन और होशपूर्वक जीना ही धर्म है । इसलिये मैं जागकर जीने को कहता हूं और स्मरण रहे कि हम सब सोये सोये से जी रहे हैं । हमारे चित्त जबतक स्वप्नों और विचारों से भरे हैं तब तक हम निद्रित ही हैं । विचार शून्य चेतना ही प्रबुद्ध होती है. . . जागृत होती है । इसलिये विचारों को क्षीण करें. . विचारों से मुक्त हों. . . विचारों का अतिक्रमण करें । निर्विचार में प्रतिष्ठित होते ही परमात्मा के. . . . आनन्द के. . . अमृत के द्वार खुल जाते हैं ।"

★

**"जो बीत गया है, उसे बीत ही जाने दो । मृत स्मृति बोझ के जाते ही वह पाया जाता है-- जो सत्य है, शिव है, सुन्दर है ।"**

## जालन्धर में विराट सत्संग :

आचार्यश्री २३ अप्रैल की सुबह जालंधर पधारे । जालंधर स्टेशन पर सैकडों व्यक्तियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया । वे पहली बार ही जालंधर आये थे लेकिन ऐसा ज्ञात होता था कि जैसे हजारों व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे । सुबह ही उन्होंने सत्संग का उद्घाटन किया । उन्होंने यहां कहा: "मित्रो! मैं क्या छोडने को कहता हूं ? मैं एक ही बात छोडने को कहता हूं और वह है मृत अतीत का बोझ । जो बीत गया है उसे बीत ही जाने दो । वह तुम्हारी चेतना पर धूल न बने । वह तुम्हारी चेतना के दर्पण को न ढंक ले । क्योंकि चेतना के निर्मल और निर्धूलि दर्पण में ही वह सब जाना जाता है जो कि सत्य है, शिव है, सुन्दर है । और हमारे चित्त के दर्पण तो पत्थर के हो गये है.... अतीत ने, मृत ने, परंपराओं ने शास्त्रों ने, सिद्धांतों ने सभी ने उनपर धूल की इतनी पर्तें जमा दी हैं कि उन दर्पणों में जीवन का अब कोई भी प्रतिबिम्ब नहीं बनता है । मैं धूल की इन सारी ही पर्तों को पोंछ डालने का आवाहन देने आया हूं । क्योंकि उन्हें पोंछ डालते ही तुम पाओगे कि तुम सदा से ही प्रभु के समक्ष खडे हो.....केवल तुम्हारे दर्पण का अंधापन ही उससे तुम्हारी दूरी है । आचार्य श्री के ये क्रांतिकारी उद्गार विद्युत की भांति दूर दूर तक फैल गये । और त्रिदिवसीय सत्संग में रोज रोज नये नये व्यक्तियों की अपार भीड बढने लगी । अंतिम दिवस का दृश्य तो अपूर्व था । आचार्यश्री का जादू काम

कर गया था। हजारों व्यक्ति उनके दर्शन और चरणस्पर्श के लिये पागल हो उठे थे। कितनी आंखों में आनन्द और कृतज्ञता के आंसु थे यह कहना कठिन है। आचार्यश्री को विदा देनी बडी कष्टपूर्ण थी। उन्होंने जैसे हजारों व्यक्तियों को निद्रा से जगा दिया था। उन्होंने जैसे वही सब कह दिया था जिसे सुनने को मनुष्यों के प्राण सदा से उत्कंठित थे। उन्होंने जैसे अंधकार में एक आशा का दिया जला दिया था। और हजारों व्यक्ति उनके चरणों में अपना सिर रख रहे थे।

★

**"मनको करें नहीं...बल्कि खाली करें। और खाली करते ही पूर्ण का बोध होता है।"**

## जालन्धर में विचारगोष्ठी :

२३, २४, २५ अप्रैल के त्रिदिवसीय सत्संग में श्री ओमप्रकाश अग्रवाल का निवास स्थान तो जैसे एक तीर्थ ही बन गया था क्योंकि आचार्यश्री वहीं विराजमान थे। सैकडों पिपासुजन उनके दर्शनार्थ वहां आये। प्रत्येक दिवस दोपहर को प्रश्नोत्तरों के लिये समय दिया गया था। जिज्ञासुओं ने प्रतिदिन अपनी जिज्ञासा शांत की। आचार्यश्री का तो शब्द शब्द अमृत है। वे जिस गहराई की अनुभूति से बोलते हैं, वह हृदय को अनायास ही स्पर्श कर लेती है। उनकी वाणी अंतस् में प्रविष्ट हो जाती है। वे जैसे कोई बंद द्वार खोल देते हैं और जो कभी नहीं दिखा था वह दिखाई पडने लगता है और जो कभी नहीं सुना था वह सुनाई पडने लगता है। वे क्या हैं और क्या कहते हैं उसका वर्णन अत्यंत कठिन है। उनका व्यक्तित्व अनिर्वचनीय है। उन्होंने मध्यान्ह गोष्ठियों में कहा: "मनुष्य का मन दुष्पूर है। वह भरता ही नहीं है। वरन् भरने की हर चेष्टा से और भी खाली मालूम पडने लगता है। वह न धन से भरता है, न पद से, न प्रतिष्ठा से। वह भरता ही नहीं है। शायद भरना उसका स्वभाव ही नहीं है। फिर अंततः मनुष्य उसे परमात्मा से भरना चाहता है। वह उससे भी नहीं भरता है। और यही सतत् असफलता मनुष्य का संताप बन जाती है। लेकिन मैं एक अलग ही दिशा सुझाता हूं .....भरने की दिशा से बिल्कुल विपरीत। मन को भरें ही नहीं, बल्कि खाली करें। और यह जीवन में सबसे बडा आश्चर्य है कि जो भरने से नहीं भरता वह खाली करते ही पाया जाता है कि सदा से ही भरा हुआ है। आह शून्य मन में पूर्ण सदा से ही विराजमान है। लेकिन भरने की विक्षिप्त चेष्टा में हम उसे देख ही नहीं पाते हैं।"

**"आत्मा तो चिर युवा है। उसका वृद्ध होना अनिवार्य नहीं है। और जो आत्मा से मर जाता है, वह मरने के पूर्व ही मर जाता है।"**

## दिल्ली में विचारगोष्ठी :

२६ अप्रैल की दोपहर बौद्धिक वर्ग के बीच आचार्यश्री की विचारगोष्ठी का आयोजन दिल्ली में हुआ। संभवतः आज सारे देश में वे अकेले ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें सभी वर्गों के व्यक्ति आदर और आनन्द से सुनते हैं। उनकी वाणी में ही ऐसा कुछ आकर्षण है कि वे सभी का मन मोह लेते हैं। उन्होंने यहां कहा: "मैं केवल उन्हें ही युवा कहता हूं जो कि सत्य की खोज का साहस करते हैं। सत्य को जो नहीं खोज रहा है, वह बूढा ही हो गया है। और शरीर की वृद्धावस्था में तो एक अपना सौन्दर्य है लेकिन आत्मा का बूढा हो जाना अत्यंत कुरूप और ग्लानिपूर्ण है। शरीर तो वृद्ध होगा ही लेकिन आत्मा की वृद्धावस्था अनिवार्य नहीं है। आत्मा तो चिरयुवा है और जो उसे बूढा बना लेता है वह अपनी ही हत्या कर लेता है। फिर उसके जीवन में सत्य की या सौन्दर्य की या शिवत्व की कोई भी ऊंचाईयां उपलब्ध नहीं होती हैं।"

★

**"धर्म है स्वरूप, धर्म है स्वभाव। इसलिये उसे खोजने कहीं भी नहीं जाना है। वह तो सब खोज छोडकर शांत होते ही उपलब्ध हो जाता है।"**

## शहीद स्मारक भवन जबलपुर में प्रवचन :

२८ अप्रैल की रात्रि जीवन जागृति केन्द्र जबलपुर की ओर से आचार्य श्री के मासिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ। आचार्यश्री ने "धर्म क्या है?" विषय पर वार्ता दी। उन्होंने कहा:" धर्म विश्वास नहीं, विवेक है। क्योंकि विश्वास है चेतना का अंधापन और विवेक है चेतना की आंखें। धर्म शब्द है नहीं, शून्य है। क्योंकि शब्द हैं उधार और पराये और शून्य है स्वयं का और निज। धर्म संप्रदाय नहीं, सत्य है। क्योंकि संप्रदाय हैं अनेक और सत्य है एक। धर्म सिद्धांत नहीं, अनुभव है। क्योंकि सिद्धांत हैं बुद्धि के और अनुभव है समग्रात्मा का। और अंततः धर्म एक खोज नहीं है। धर्म अखोज है क्योंकि खोजते हैं हम उसे जो अनुपलब्ध है। और धर्म तो है स्वरुप। वह तो है स्वभाव। वह तो वही है जो कि सदा ही उपलब्ध है। इसलिये उसे खोजना नहीं होता है। वरन् जैसे ही कोई सब खोज छोडकर शांत होता है वैसे ही उसे उपलब्ध हो जाता है।"

**"शून्य और जागृत.....बस इतनी ही है समस्त साधना। इन दो शब्दों में ही साधना का संपूर्ण सार छिपा हुआ है।"**

## नारगोल, गुजरात में साधना शिविर :

आचार्यश्री के सतत् सान्निध्य लाभ और साधना की वैज्ञानिक जीवन दृष्टि को समझने के लिये गुजरात तथा महाराष्ट्र प्रदेश से नारगोल साधना शिविर में लगभग ७०० प्रेमी साधक उपस्थित हुये। इस साधना शिविर को आचार्यश्री ने २ मई की रात्रि उद्घाटित किया और फिर तीन दिवसों तक सुबह मध्यान्ह तथा रात्रि ध्यान, प्रश्नोत्तर तथा प्रवचन के अद्भुत कार्यक्रम आयोजित हुये।यहां पर आपने केन्द्रीयरूप से कहा। "सत्य है स्वयं में। सत्य है वहीं, जहां मैं हूं। और इसलिये जो उसे कहीं और खोजता है, वह व्यर्थ ही श्रम करता है। स्वयं को जान लेना ही उसे जान लेना है। इसलिये और सब छोडें और स्वयं को खोजें। लेकिन स्वयं को कैसे खोजेंगे? उस खोज का उपकरण है: शून्य जागरूकता (Silent awareness) शून्य हों और जागृत हों। और फिर शेष सब स्वयं ही हो जाता है। शून्य पूर्ण का द्वार है।"

★

**"दुख नहीं, चाहिये आनन्द। अंधकार नहीं, चाहिये आलोक। तो हो जाओ शांत और मौन शून्य। क्योंकि चित्त की पूर्ण विश्रांति में ही उसका अवतरण होता है जो कि अमृत है।"**

## प्रोग्रेसिव ग्रुप बंबई में प्रवचन :

६ मई की रात्रि भारतीय विद्याभवन, बंबई में आचार्यश्री का अमृत प्रवचन आयोजित किया गया था। उन्होंने यहां कहा: "मनुष्य के जीवन में मूल दुःख क्या है? अशांति और तनाव। और अशांति और तनाव क्यों है? क्योंकि हम चित्त को विश्राम देना ही भूल गये हैं। शरीर तो विश्राम करता भी है लेकिन चित्त को तो कोई विश्राम ही नहीं है। उसे तो हम निरंतर ही जीवन के कोल्हू में जोते रखते हैं। और कोल्हू के बैल भी रात्रि विश्राम करते हैं। लेकिन चित्त तो रात्रि भी सपनों में सक्रिय रहता है.....वह तो रात्रि में भी क्रोध करता है, भयभीत होता है, चिन्तित होता है। चित्त पर यह अतिभार ही व्यक्तित्व के समस्त संगीत को नष्ट कर देता है। और फिर ऐसा क्लांत और थका हुआ मन सत्य को या स्वयं को जानने में भी असमर्थ हो जाता हो तो

कोई आश्चर्य नहीं है। इसलिये मैं एक ही सलाह देता हूं....एक ही मेरी शिक्षा है, और वह है चित्त को विश्राम देने की। जितना हो सके चित्त को विश्राम दें। ...उसे खाली छोडें। किन्हीं क्षणों में चित्त को चुपचाप देखते रहें ...बस देखते रहें। और देखते देखते ही वह शांत हो जाता है। और फिर एक दिन जब वह पूर्ण शांति में होता है तब उसके दर्शन होते हैं जो कि वस्तुतः है। वही मैं हूं.....वही सर्व है....वही सत्य है....वही प्रभु है। और यह अनुभूति समग्र जीवन को आमूल ही बदल जाती है। जहां दुख था, वहां आनन्द और जहां मृत्यु थी वहां अमृत का आगमन हो जाता है।"

★

**"ज्ञान है मुक्ति और ज्ञान ही है शक्ति। धर्म है मुक्ति। विज्ञान है शक्ति। और इन दोनों के बीच चाहिये संतुलन। असंतुलन तो मनुष्यता का दुर्भाग्य ही सिद्ध हो सकता है।"**

## जैन सोशलग्रुप बंबई में प्रवचन :

७ मई के सुबह बिरला क्रीडा केन्द्र में आचार्यश्री जैन सोशल ग्रुप द्वारा आयोजित वार्ता में पधारे। उन्होंने कहा : "ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है। इसलिये मैं ज्ञान प्रसार की प्रत्येक चेष्टा का स्वागत करता हूं। ज्ञान मुक्ति भी है और ज्ञान शक्ति भी है। आत्मज्ञान मुक्ति है। पदार्थज्ञान शक्ति है। ज्ञान की इन दोनों दिशाओं में जितना संतुलन होगा संस्कृति उतनी ही संगीतपूर्ण और समग्र होती है। लेकिन आजतक इन दोनों में असंतुलन रहा और यही मनुष्यता का दुर्भाग्य बन गया है। ज्ञान के अंतस् और बाह्य रुपों, धर्म और विज्ञान में, संतुलन खोजने की समस्या ही हमारी सबसे बडी समस्या है। लेकिन अंध विश्वास छूटे और विवेक विकसित हो तो इस संतुलन को उपलब्ध कर लेने से सरल और क्या हो सकता है?"

★

**"सत्य एक है। असत्य अनेक हैं। धर्म भी एक ही है। अधर्म जरूर अनेक हैं। अनेक में जो भटकता है वह अधर्म में भटकता है और जो एक में प्रविष्ट हो जाता है, वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है।"**

## बसंत व्याख्यानमाला पूना में प्रवचन :

१५ मई की रात्रि बसंत व्याख्यानमाला के अंतर्गत आचार्यश्री ने पूना में प्रवचन दिया। उनके क्रांतिकारी शब्दों ने जनता जनार्दन की आत्मा को ही जैसे

आन्दोलित कर दिया। सत्य का प्रभाव ही उनका प्रभाव है। सत्य का चमत्कार ही उनका चमत्कार है। उन्होंने यहां कहा : "मैं एक ही बात यहां करने आया हूं कि तुम यदि धर्म में प्रवेश चाहते हो तो धर्मों से बचना। क्योंकि धर्मों ने ही धर्म की हत्या कर दी है। सत्य एक है और एक ही हो सकता है। असत्य जरुर अनेक हो सकते हैं। धर्म भी एक ही है। अधर्म जरूर अनेक हैं। उस एक धर्म का कोई भी नाम नहीं है। क्योंकि "एक" का कोई नाम हो ही कैसे सकता है.. वह तो अनाम है। लेकिन वह प्रत्येक में छिपा बैठा है और जो भी अपने भीतर आ जाता है, वह उसके मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है। आह! उसका मंदिर स्वयं के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है"।

★

**"प्रत्येक व्यक्ति हैं अतुलनीय और अद्वितीय। वह वही है जो है। और वह कोई अन्य नहीं, बस स्वयं ही होने को पैदा हुआ है। जो उसे अन्यों से प्रतिस्पर्धा में नहीं, वरन् आत्मविकास में ले जाये वही सम्यक् शिक्षा है।"**

## अंतरभारती पूना में प्रवचन.

आचार्यश्री ने देश के विभिन्न स्थलों से आये हुये विद्यार्थियों को अंतरभारती संस्था पूना में १७ मई के सुबह उद्‌बोधित करते हुये कहा: "वह शिक्षा अशिक्षा से भी बदतर है जो कि शिक्षार्थी के चित्त को महत्वाकांक्षा के ज्वर में दीक्षित करती है। क्योंकि महत्वाकांक्षा के अतिरिक्त आत्मा का और कोई रोग नहीं है। शेष सब रोग तो शरीर के हैं। लेकिन महत्वाकांक्षा आत्मा का रोग है। और तथाकथित शिक्षा आजतक इस रोग की, इस ज्वर की, इस विक्षिप्तता की अग्नि में घी का ही कार्य करती रही है। उसने सब भांति महत्वाकांक्षा की इस विक्षिप्तता को प्रज्जवलित ही किया है। और परिणाम में हमें यह सभ्यता उपलब्ध हुई है जिसका मूल स्वर हिन्सा और युद्ध और विनाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। महत्वाकांक्षी मनुष्यता अंततः सार्वलौकिक आत्मघात के निकट आकर खडी हो गई है। यदि इस आत्मघात से मनुष्य जाति को बचाना हो तो शिक्षा में आमूल और तात्कालिक परिवर्तन जरूरी है। शिक्षा को गैर महत्वाकांक्षी बनाना आवश्यक है। लेकिन शायद ईर्ष्या और द्वेष के द्वारा अहंकार को त्वरा देने के अतिरिक्त हम मनुष्य के विकास का कोई और मार्ग जानते ही नहीं हैं। जबकि मार्ग है। और जिसे मार्ग कहते हैं, वह तो कोई मार्ग ही नहीं है। वह तो एक प्रकार का पागलपन है, जिसमें दौडना तो बहुत होता

है लेकिन पहुंचना बिल्कुल भी नहीं। सम्यक् शिक्षा, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और द्वेष और अहंकार पैदा नहीं कर सकती है। वह तो प्रत्येक में जो छिपा है, उसे प्रगट करने का अवसर ही बनेगी। वह दूसरे से होड नहीं, वरन् स्वयं का विकास सिखायेगी। वह प्रतिस्पर्धा की नहीं वरन् आत्म अतिक्रमण की सीख होगी। वह प्रत्येक व्यक्ति के अनूठेपन और अतुलनीय अद्वितीयता के आधार पर निर्मित होगी और उसे वह वही बनने की ओर गतिमय करेगी जो कि वह बनने को पैदा हुआ है।"

★

**"जन्म ही जीवन नहीं है। बीज ही वृक्ष नहीं है। बीज को वृक्ष बनना है। जन्म को जीवन बनना है। और तभी कृतार्थता उपलब्ध होती है।"**

## जूनागढ में विराट सत्संग :

आचार्यश्री के क्रांतिकारी मार्ग निर्देशन के लिये जूनागढ में १८, १९ तथा २० मई को त्रिदिवसीय सत्संग आयोजित किया गया। इस सत्संग के द्वारा जन मानस में एक आत्मिक लहर का जागरण हुआ। यहां पर आचार्यश्री ने कहा: "बीज की सार्थकता बीज में ही नहीं है। वरन् उन फलों और फूलों में है जो कि वह बन सकता है। और यही जीवन के संबंध में भी सत्य है। इसलिये जो जन्म को जीवन समझ लेता है वह भूल में पड जाता है। जन्म ही जीवन नहीं है। बीज ही वृक्ष नहीं है।"

★

**पृथ्वी नर्क बन गई है....क्यों? अच्छे लोगों की पलायन वृत्ति से। और पृथ्वी स्वर्ग भी बन सकती है, उनकी जीवन के प्रति प्रतिबद्धता से।"**

## सौराष्ट्र जीवन जागृति केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं के बीच :

आचार्यश्री ने २० मई की मध्यान्ह जीवन जागृति केन्द्र, सौराष्ट्र के कार्यकर्ताओं को संबोधित किया। उन्होंने कहा:" मनुष्यता अंधकार से घिरी है। और ऐसे समय में जो चुपचाप बैठा है, वह भी दोषी है। अच्छे लोग...तथाकथित अच्छे लोग, सदा जीवन की धारा से दूर खडे रहे हैं। और इन अच्छे लोगों ने मनुष्य जाति का जितना अहित किया है, उतना बुरे लोगों ने भी नहीं किया है : बुराई से न लडना भी बुराई में सम्मिलित होना है, और जीवन से भागना भी जीवन को बुरे लोगों के हाथों मे देना है। इसलिये मैं कहता हूं कि अच्छे लोगों को जीवन से

पलायन वृत्ति छोड देनी चाहिये । उन्हें जीवनधारा के मध्य में खडा होना चाहिये ताकि जीवन को सुन्दर और सत्य बनाया जा सके । उनके जीवन में होने. . .जीवन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता से पृथ्वी को स्वर्ग बनाया जा सकता है । क्योंकि यह पृथ्वी उनके पलायन से ही नर्क बन गई है ।"

★

**"अज्ञान क्या है ? निद्रा अज्ञान है । और ज्ञान ? जागरण ज्ञान है । स्वयं के और सर्व के प्रति जो जागता है, वह परम जीवन को उपलब्ध होता है ।"**

## उदयपुर में साधना शिविर :

९, १० तथा ११ जून को उदयपुर में आचार्यश्री के सान्निध्य में एक साधना शिविर का आयोजन किया गया । इस साधना शिविर में साधकों को अपरिमित लाभ हुआ । आचार्यश्री का निकट सान्निध्य तो जीवन में ततः एक क्रांति ही बन जाता है । उन्होंने यहां कहा : "मैं मनुष्य को सोया हुआ देखता हूं । हम सब सोये हुये हैं । और इसीलिये तो जीवन अपरिचित और अनजाना और व्यर्थ बीत जाता है । और सोया हुआ मनुष्य भी क्या मनुष्य है ? वह तो मनुष्य कम और मशीन ही ज्यादा होता है । निद्रा अर्थात् यांत्रिकता । और यांत्रिकता का जीवन भी कोई जीवन है ? यांत्रिकता अर्थात् जडता । लेकिन हम तो इस सोये हुये पन को ही सब कुछ समझ लेते हैं । जबकि जीवन है जागरण । मित्रो, जागना है स्वयं के प्रति और सर्व के प्रति । जागकर स्वयं में जो उपलब्ध हो वही है आत्मा और सर्व में जिसके दर्शन होते हैं वही है परमात्मा । निद्रा अज्ञान है । जागरण ज्ञान है ।"

★

**"सम्यक् शिक्षा है जीवन की शिक्षा. . . . .ऊर्ध्वगामी ज्योति की शिक्षा वह क्षुद्र से विराट् की ओर, मृण्मय से चिन्मय की ओर गति है ।"**

## राजस्थान शिक्षक सम्मेलन में :

आचार्यश्री ने ११ जून की मध्यान्ह शिक्षक सम्मेलन को संबोधित किया । उन्होंने कहा : "शिक्षा का केन्द्रीय लक्ष्य क्या है ? जीवन मूल्यों की दीक्षा ही न ? क्षुद्र से चित्त विराट् की ओर गतिमय हो, पार्थिव से अपार्थिव की ओर, शरीर से आत्मा की ओर. . यही न ? लेकिन आज यह कहां हो रहा है ? शायद तथाकथित शिक्षा जीवन की शिक्षा ही नहीं है । वह तो आजीविका का साधन मात्र ही प्रतीत होती है । लेकिन आजीविका ही तो जीवन नहीं है । जीवन तो कुछ

और ही है। वह आजीविका का मिट्टी का दिया नहीं . . . वह तो सूर्य की ओर उठती हुई ज्योतिशिखा है। सम्यक् शिक्षा सदा ही ऊर्ध्वगामी ज्योति की शिक्षा है। और जब तक ऐसी शिक्षा विकसित नहीं होती है तब तक मनुष्य का कोई भविष्य नहीं है।"

★

**"मृत्यु है बाहर और भीतर है अमृतत्व। लेकिन हम बाहर ही खोजते हैं, इसलिये मृत्यु से बार बार मिलन होता है। और जो एकबार भी भीतर झांक लेता है, वह सदा के लिये मृत्यु के अतीत हो जाता है।"**

## रोटरी क्लब पोरबंदर में :

रोटरी क्लब में आचार्यश्री २१ जून की संध्या पधारे। अपने अमृत प्रवचन में आपने कहा कि: "वह जो अत्यंत निकट है, उसे ही हम दूर की खोज में खो देते हैं। वह जो हमारे ही भीतर है, उसे ही हम बाहर की दौड में खो देते हैं। ऐसे जीवन रिक्त होता है और बस मृत्यु भर निकट आती है। मैं पूछना चाहता हूं कि इस तथाकथित जीवन में हम मृत्यु के अतिरिक्त और क्या उपलब्ध कर पाते हैं ? क्या यह बहुत अजीब सी बात नहीं है कि जीवन की तो खोज है और अंततः हाथ आती है मृत्यु ? होना तो उल्टा ही चाहिये। होना तो चाहिये कि जीवन अमृतत्व को उपलब्ध हो. . . . जीवन को परम जीवन मिले। और तब ही हम उसे सफल जीवन भी कह सकते हैं। लेकिन निराश होने का कोई कारण नहीं है : जीवन अमृतत्व को उपलब्ध हो सकता है। जीवन सरिता परम जीवन के सागर को पा सकती है। लेकिन, काश। हम स्वयं में उसे खोजें। तब तो वह अमृत है ही। बाहर है मृत्यु : लेकिन भीतर कोई मृत्यु नहीं है।"

★

**"सत्य के सागर को पाना है तो जिज्ञासा की जीवन्त और सतत् प्रवाहमान सरिता बनो. . . विश्वासों, मान्यताओं और पूर्वाग्रहों के बंद और मृत सरोवर नहीं।"**

## पोरबंदर में विशाल सत्संग :

२१, २२ एवं २३ जून को आचार्यश्री के सान्निध्य में क्रांतिकारी त्रिदिवसीय सत्संग का वृहद् आयोजन किया गया। पोरबंदर के सत्य के जिज्ञासुओं में एक नवीन स्फुरण का आचार्यश्री के सत्संग से अभ्युदय हुआ। सत्संग में जिज्ञासुओं को संबोधित करते हुये आपने कहा : "सत्य की खोज का पथ सतत् जिज्ञासा का पथ

है। जैसे सरितायें सतत् सागर की ओर बढती रहती हैं ऐसी जिज्ञासा भी सदा सत्य की और बहती रहनी चाहिये। और मन विश्वासों और धारणाओं और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो तभी ऐसा हो सकता है। जो किन्हीं मान्यताओं में बंद है, उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। फिर वह जीवन सरिता न रहकर एक बंद सरोवर हो जाता है। फिर सत्य के सागर से उसका मिलन असंभव है। इसलिये मैं कहता हूं : "स्वयं को सदा खुला हुआ रखो. . .सब भांति मुक्त और निर्बन्ध, ताकि एक दिन उस सागर को पाया जा सके जिसे पाने के लिये कि प्राण सदा से आतुर हैं।"

★

**"मनुष्य के चित्त पर सबसे बडी संकट छाया है महत्वाकांक्षा की। वही है उसका आत्मिक ज्वर. . . वही है उसकी मानसिक विक्षिप्तता। और जो उससे मुक्त नहीं है, वह ठीक से शिक्षित नहीं है।"**

## पोरबंदर कन्या गुरुकुल में :

पोरबंदर कन्या गुरुकुल में आचार्यश्री २३ जून की मध्यान्ह पधारे। यहां पर आयोजित सभा में बोलते हुये आचार्यश्री ने कहा : "मनुष्य बीमार है। पूरी मनुष्यता ही ज्वरग्रस्त है। और यह ज्वर है महत्वाकांक्षा का। और दुर्भाग्यों का दुर्भाग्य तो यह है कि हमारी शिक्षा इस ज्वर को घटाती नहीं, विपरीत बढाती है। शायद ईर्ष्या और द्वेष और प्रतिस्पर्धा के द्वारा अहंकार को त्वरा देने के अतिरिक्त हम मनुष्य के विकास का और कोई मार्ग ही नहीं जानते हैं। लेकिन मार्ग है। और जिसे हम अब तक मार्ग समझते रहे हैं, वह कोई मार्ग ही नहीं है। वह तो एक प्रकार का सन्निपात है जिसमें दौडना तो हो जाता है लेकिन पहुंचना कहीं भी नहीं हो पाता है। सम्यक् शिक्षा प्रतिस्पर्धा, अहंकार, तुलना और महत्वाकांक्षा नहीं पैदा कर सकती है। वह तो प्रत्येक में जो छिपा है, उसे प्रगट करने का अवसर बनेगी। वह दूसरे से होड नहीं वरन् स्वयं का विकास ही सिखायेगी। निश्चय ही व्यक्ति को विकास सिखाना है, लेकिन दूसरे से आगे बढने की भ्रांत छाया में नहीं, वरन् स्वयं से ही प्रतिपल आगे बढने के प्रकाश में। और यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के व्यक्तित्व की स्वीकृति, स्वयं में आनन्दित होने की क्षमता, शांत होने की पात्रता और स्वयं में छिपी संभावनाओं की खोज को गति देकर किया जा सकता है।"

**"धर्म को बचाना है। लेकिन किससे ? अधार्मिकों से ? नहीं. . . बल्कि तथाकथित धार्मिकों और धर्मों से ही धर्म को बचाना है।"**

## भावनगर में विराट सत्संग :

३, ४ तथा ५ जुलाई को भावनगर में विराट् सत्संग का आयोजन आचार्य श्री के पवित्र सान्निध्य में हुआ। उन्होंने यहां कहा : "धर्म को बचाना है। लेकिन किससे ? अधार्मिकों से ? नहीं . . . बल्कि तथाकथित धार्मिकों और धर्मों से ही धर्म को बचाना है। जीवन धर्म से विहीन हो गया है। लेकिन यह अधार्मिकों के कारण नहीं हुआ है। यह हुआ है धर्म के नाम पर पैदा हुये संप्रदायों, संगठनों और स्वार्थों के कारण। यह हुआ है धर्म की आड में चलते पाखंडों के कारण। यह हुआ है धर्म के नाम पर फैलाई गई अंधश्रद्धाओं, मूढ रुढियों और विक्षिप्तताओं के कारण। इन सबकी ही प्रतिक्रिया स्वरुप प्रबुद्धजन धर्मविमुख हो गये हैं। धर्म पाखंड से मुक्त हो तो लोकचेतना पुनः धार्मिक हो सकती है। इसलिये जगत् के समस्त विचारशील लोगों के समक्ष आज धर्म को पाखंडों, अंधविश्वासों, और स्वार्थों और संगठनों से मुक्त करने से बडा और कोई पुनीत कार्य नहीं है।"

★

**"पुरुष और नारी के व्यक्तित्व अत्यंत भिन्न और अतुलनीय हैं। लेकिन नारी धीरे धीरे एक द्वितीय पुरुष बनती जा रही है। यह दुर्घटना अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है।"**

## भावनगर में महिलाओं की विशाल सभा :

आचार्यश्री ने ३ जुलाई की मध्यान्ह भावनगर में महिलाओं की विशाल सभा को संबोधित किया। उन्होंने यहां कहा : "नारी और पुरुष का व्यक्तित्व समान नहीं है। उन दोनों में आधारभूत भिन्नतायें हैं। लेकिन उन दोनों की शिक्षा दीक्षा समान हो रही है। यह बात अत्यंत घातक है। और परिणामतः नारी के व्यक्तित्व को नष्ट कर रही है। नारी को अपने व्यक्तित्व की खोज करना है। और उसके अनुकूल ही शिक्षा का मार्ग भी खोजना है। वह पुरुषका अनुकरण बनकर आत्मघाती ही सिद्ध हो सकती है।"

★

**"मानवात्मा को स्वयं को आमूल बदलना है तो ही मनुष्यता बच सकती है। लेकिन निराश होने का कोई भी कारण नहीं है क्योंकि चेतना की अभिव्यक्ति की अनन्त संभावनायें सदा शेष हैं।"**

## भावनगर में शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच :

आचार्यश्री ने ५ जुलाई की मध्यान्ह शिक्षकों और शिक्षार्थियों को संबोधित किया। उन्होंने उनसे कहा : "एक नये मनुष्य को जन्म देना है। पुराने मनुष्य का आधार था, विश्वास। नये मनुष्य का आधार होगा, विवेक। पुराना मनुष्य असफल हो गया है लेकिन उसके साथ ही मनुष्यता के भी असफल हो जाने का कोई कारण नहीं है। चेतना स्वयं के साथ अनन्त प्रयोग करने में समर्थ है। उसकी अभिव्यक्ति के अनन्त मार्ग और द्वार हो सकते हैं। एक मार्ग की असफलता यात्रा की ही असफलता नहीं है।"

★

**"धर्म है आंतरिक। प्रभु का मंदिर है भीतर। और हम उसे बाहर खोजते हैं, इसीलिये खो देते हैं।"**

## इन्दौर में ज्ञानसत्र :

इन्दौर नगर में आचार्यश्री के कार्यक्रमों की निरंतर प्रतीक्षा होती है। अतः जब २०, २१, २२ तथा २३ जुलाई के कार्यक्रम आयोजित हुये तो जिज्ञासु साधकों तथा बौद्धिक चिन्तकों में खुशी की लहर दौड गई। यह ज्ञानसत्र रविन्द्रनाथ टैगोर नाट्यगृह में आयोजित किया गया था। इस ज्ञानसत्र में उन्होंने जो कहा वह आंखों को खोलने वाला था। उनके शब्द तो ऐसे हैं जैसे अंधेरे में बिजली कौंध उठती है। उसके प्रकाश में अंधेरा पथ अचानक आलोकित हो उठता है। लेकिन जिनकी नींद गहरी है वे बिजली के कौंध और आवाज से भयभीत भी हो उठते हैं। शायद यही भय उनके प्राणों पर छा जाता है कि कहीं उनकी नींद ही न टूट जाये। आचार्यश्री ने यहां कहा : "मैं धर्म के नाम पर मनुष्य को अधर्म में डूबे हुये देखता हूं। इस तथाकथित अधर्म ने ही धर्म के जन्म को रोका हुआ है। और जब तक हम इस झूठे धर्म से मुक्त नहीं होंगे तब तक धर्म में हमारी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती है। असत्य के जाने पर ही सत्य का आगमन हो सकता है। मंदिर, मस्जिद और मूर्ति पूजावाला यह धर्म झूठा है क्योंकि यह आंतरिक नहीं है। बाह्य से धर्म का क्या संबंध ? धर्म का मंदिर तो मन में है, और धर्म का प्रभु तो भीतर है। और जिसे वहां खोजना हो उसे बाहर उसकी खोज बंद कर देना चाहिये। क्योंकि बाहर की खोज के कारण ही भीतर दृष्टि नहीं जा पाती है।"

**"स्वयं को जानना है ? आनन्द को उपलब्ध करना है ? तो चित्त को विश्राम में ले चलें । जीवन में जो भी सत्य है, शिव है, सुन्दर है. . . सभी का द्वार शांत चित्त है ।"**

## जीवन जागृति केन्द्र इंदौर के कार्यकर्त्ताओं के बीच :

२० जुलाई के मध्यान्ह आचार्यश्री का मार्गनिर्देशन पाने के लिये जीवन जागृति केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं की एक संगोष्ठी हुई । संबोधित करते हुये आचार्यश्री ने कहा : "मनुष्य के जीवन का मूल दुख क्या है ? अशांति और तनाव । और अशांति और तनाव क्यों है ? क्योंकि हम चित्त को विश्राम देना ही भूल गये हैं । शरीर तो विश्राम करता भी है लेकिन चित्त को तो कोई विश्राम है ही नहीं । उसे तो हम निरंतर जीवन के कोल्हू में जोते रखते हैं । कोल्ह के बैल भी रात्रि को विश्राम करते हैं, लेकिन चित्त तो रात्रि भी सक्रिय रहता है । वह तो रात्रि भी स्वप्न देखता है... क्रोध करता है, भयभीत होता है, चिन्तित होता है । चित्त पर यह अतिभार ही व्यक्तित्व के समस्त संगीत को नष्ट कर देता है । और फिर ऐसा क्लांत और थका हुआ मन सत्य को या स्वयं को जानने में भी असमर्थ हो जाता हो तो कोई आश्चर्य नहीं है । इसलिये मैं एक ही साधना के लिये प्रार्थना करता हूं और वह है चित्त को विश्राम देने की । जितना हो सके उतना चित्त को विश्राम दें । उसे खाली छोडें । किन्हीं क्षणों में सबसे चुपचाप मौन चित्त को देखते रह जावें । देखते देखतेही वह शांत होता जाता है। और फिर एक दिन चित्त पूर्ण शांति और विश्राम में होता है तो उसके दर्शन होते हैं जो कि मैं हूं । और यह दर्शन सारे जीवन को आमूल ही बदल डालता है । यह अनुभूति दुख की जगह आनन्द में प्रतिष्ठा बन जाती है ।

**"धर्म की ओर पहला कदम क्या है? मानसिक गुलामी की जंजोरों को तोड डालना । श्रद्धाओं, विश्वासों और अंधी मान्यताओं से मुक्त हो जाना ही धर्मकी ओर पहला कदम है ।"**

## इंदौर के नवयुवक पत्रकारों के बीच :

इंदौर नगर के नवयुवक पत्रकारों को एक पत्रवार्त्तामें आचार्यश्री ने संबोधित करते हुये कहा : "धर्म का श्रद्धा और विश्वास से संबंध अत्यंत घातक सिद्ध हुआ है। उसके कारण ही धर्म अंधविश्वास बन सका है और हजारों वर्षों से मनुष्य को अंधकार में रहना पड रहा है । विश्वास मानसिक अंधेपन और गुलामी का ही दूसरा नाम है । और मानसिक रुप से गुलाम चेतना कैसे मुक्त हो सकती है. . कैसे आनंद पा सकती है. . . कैसे आलोक को उपलब्ध हो सकता है ? इसलिये मेरी दृष्टि में तो व्यक्ति की चेतना में क्रांति की शुरुआत अंधविश्वासों के सारे जाल को तोड देने से ही होती है । धर्म की ओर पहला कदम वही है ।"

(शेष पृष्ट २ का)

जनवरी– ६९. दि. ७–८–९–१० **बंगलौर** : सत्संग : श्री. सी. जे. टोलिया, जीवन जागृति केन्द्र, १२, केम्ब्रिज रोड, अलसूर, बंगलौर ८.

" दि. १६–२०–२१ **अमरावती** : सत्संग : श्री अरविंद ढवळे, खापर्डे बगीचा, जीवन जागृति केन्द्र, अमरावती.

" ३०–३१, फरवरी ६९. १–२–३ **बंबई** : प्रवचन, जीवन जागृति केन्द्र, २६, ईस्टर्न चेम्बर्स, १२८, पूना स्ट्रीट, बंबई–९.

फरवरी–६९. दि. १३–१४–१५ **भावनगर** : प्रवचन : महाराजा–भावनगर नीलम बाग पेलेस भावनगर.

" दि. २५–२६–२७ फरवरी, **जूनागढ** : सत्संग श्री मगनलाल तन्ना, जीवन जागृति केन्द्र, जूनागढ, सौराष्ट्र.

मार्च – ६९. दि. ८–९–१० **पोरबंदर** : सत्संग : श्री धीरूभाई नानजी कालिदास पोरबंदर, सौराष्ट्र.

" दि. २०–२१–२२ **पूना** : सत्संग : श्री माणिकलाल बाफना, जीवन जागृति केन्द्र, स्पार्टन लग्झरी, सी.–१, २४७/१४ बी, यरवडा रोड, पूना–६.

अप्रैल – ६९. दि. १२–१३–१४–१५ **इन्दौर** : सत्संग : श्री एल. एस. आचार्य, जीवन जागृति केन्द्र, मेहता चेम्बर्स, ३४ सियागंज, ईन्दौर, मध्य प्रदेश.

मुद्रण स्थान : स्टेटस पिपल प्रेस, घोघा स्ट्रीट, बंबई १.

# जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई द्वारा प्रकाशित
# आचार्य रजनीश साहित्य

| हिन्दी साहित्य | मू. रुपया |
|---|---|
| साधनापथ | ३–०० |
| क्रांतिबीज | ३–०० |
| सिंहनाद | १–५० |
| अमृतकण | ०–६० |
| अहिंसादर्शन | ०–४० |
| मिट्टी के दिये | ३–०० |
| पथ के प्रदीप | ४–५० |
| मैं कौन हूँ | २–०० |
| कुछ ज्योतिर्मय क्षण | ०–४० |
| नये मनुष्य की जन्म की दिशा | ०–४० |
| सूर्य की ओर उड़ान | १–०० |
| प्रेम के पंख | ०–७५ |
| सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण | १–२५ |
| अज्ञात की ओर | १–०० |
| नये संकेत | १–७५ |

| मराठी साहित्य | |
|---|---|
| साधनापथ | ३–०० |
| सिंहनाद | २–०० |
| अहिंसादर्शन | ०–५० |
| अमृतकण | ०–५० |
| क्रांतिबीज | २–५० |
| प्रेमाचे पंख | ०–७५ |

| गुजराती साहित्य | |
|---|---|
| साधनापथ | ३–०० |
| क्रांतिबीज | ३–०० |
| माटी ना दिवा | ३–०० |
| पंथ ना प्रदीप | ३–०० |
| सिंहनाद | १–२५ |
| नवा संकेत | १–७५ |
| अमृतकण | ०–५० |
| अहिंसादर्शन | ०–५० |
| केटलीक ज्योतिर्मय क्षण | ०–७५ |
| नवा मनुष्य ना जन्म नी दिशा | ०–७५ |
| अज्ञात प्रति | २–०० |
| हुं कोण छुं | २–०० |
| सूर्य तरफनुं उड्डयन | १–०० |
| सत्यना अज्ञात सागरनुं आमंत्रण | १–५० |

| अंग्रेजी साहित्य | |
|---|---|
| पथ आफ सेल्फ रियेलायजेशन | २–२५ |

पुस्तकें मिलने का पता :
जीवन जागृति केन्द्र.
१२८, ईस्टर्न चेम्बर्स, ३ रा माला, पूना स्ट्रीट, बम्बई–९.

१०

मनुष्य क
पुनरुत्थान
मनुष्यके आध्यात्मि
आध्यात्मिक पुनरुत्थान क
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थान
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मिक
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थानके
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥ म
ाध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थान
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मिक
लिए समर्पित ॥ मनुष्यके आध्या
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥ म
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मि
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्था
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मि
लिए समर्पित ॥ मनुष्यके आध्या
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥ मनु
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्यात्मि
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थ
पुनरुत्थानके के लिए समर्पित
समर्पित ॥ मनुष्यके आ
लिए स

जीवन जागृति केन्द्र